BAAT KA DANI
BY
ACHARYA CHATUR SAIN

बात का धन

आचार्य चतुरसेन शास्त्री

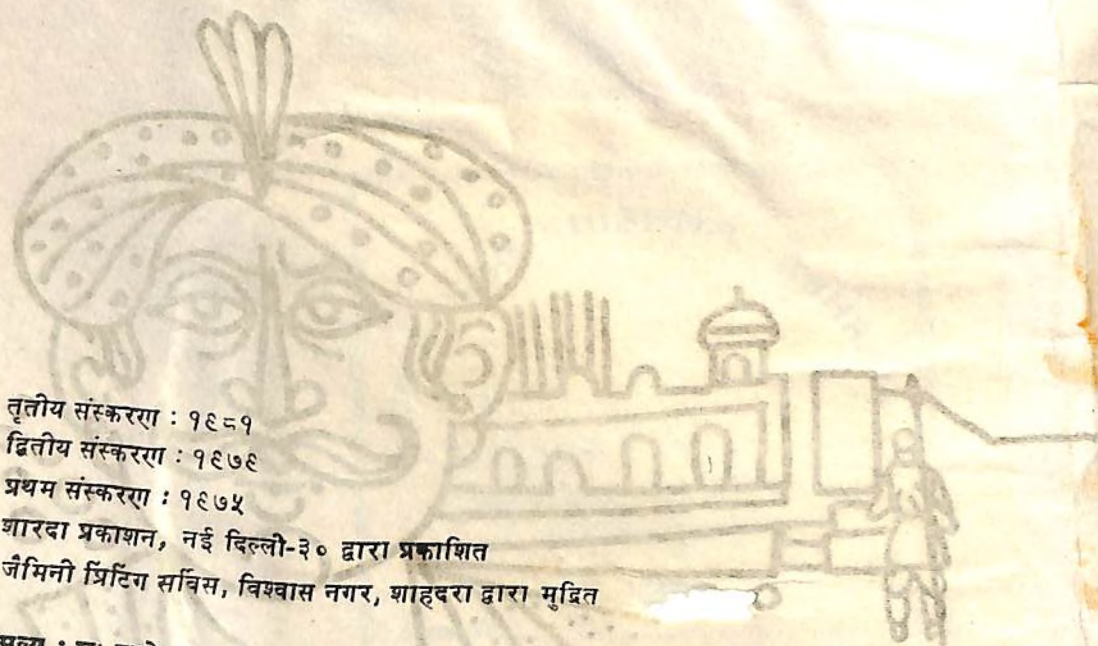


बात का धनी

आचार्य चतुरसेन शास्त्री



शारदा प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली-३०



तृतीय संस्करण : १९८१
द्वितीय संस्करण : १९७९
प्रथम संस्करण : १९७५
शारदा प्रकाशन, नई दिल्ली-३० द्वारा प्रकाशित
जैमिनी प्रिंटिंग सर्विस, विश्वास नगर, शाहदरा द्वारा मुद्रित

मूल्य : छः रुपये

Rs. 6.00

BAT KA DHANI by : Acharya Chatursen Shastri

आचार्य चतुरसेन शास्त्री प्रकाण्ड विद्वान् तथा इतिहासबेत्ता थे। उनका ऐतिहासिक कथा साहित्य विशेष रूप से हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है। आचार्यजी ने अतीत इतिहास के गर्भ से अनेक प्रेरणा स्रोत खोज निकाले। उनके दर्जनों उपन्यास तथा सैंकड़ों कहानियां इतिहास के गम्भीर अध्ययन और मनन की परिचायक हैं।

आचार्य चतुरसेन ने उस युग में ऐतिहासिक क्षेत्र को अपनाया जबकि हिन्दी में ऐतिहासिक कथा-साहित्य का अभाव-सा था।

आचार्यजी की एक और विशेषता का उल्लेख यहां आवश्यक है : उन्होंने जहां एक ओर गम्भीर पांडित्यपूर्ण साहित्य का सृजन किया, वहां साथ ही उनका बाल किशोर साहित्य-सृजन भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उस युग में जबकि हिन्दी में बाल किशोर साहित्य का अभाव-सा था, आचार्यजी ने अपनी कई रचनाओं द्वारा इस अभाव की पूर्ति की।

प्रस्तुत पुस्तक में आचार्यजी की इतिहास के गर्भ से चुनी हुई बाल-किशोरोपयोगी रोचक और प्रेरणाप्रद कहानियां संकलित हैं।

—प्रकाशक

कहानी-क्रम

●●

●●

केसरीसिंह की रिहाई

वसन्त का मौसम था, धूप निकल रही थी। महल की दीवारें पत्थर के टुकड़ों की थीं, इनमें खिड़कियां लगी हुई थीं जिनमें से होकर सूर्य का प्रकाश वहां पड़ रहा था। महल का फर्श स्वच्छ मकराने के पत्थरों का था। महाराणा मध्य-बिंदु की भांति, बीच में एक शीतल पाटी पर बैठे थे। उनका कद मझोला, मूंछें एक-आध पकी हुई, रंग सांवला, आंखें बड़ी-बड़ी थीं। दाढ़ी नहीं थी। वह बदन पर एक रेशमी बहुमूल्य चादर डाले थे। सिर पर दूध के झाग के समान सफेद पगड़ी थी, जिस पर एक बड़ा-सा लाल तुर्रा लगा था। गले में पन्ने का एक अत्यन्त मूल्यवान कण्ठा था। उनका सीना चौड़ा, उठान ऊंची और शरीर बलवान् तथा फुर्तीला था। उनकी कमर में पीले रंग की धोती थी। उनके सिर के बाल काले और बड़ी-बड़ी आंखें मस्ती से भरपूर थीं।

महाराणा के दाहिने हाथ पर उनके ज्येष्ठ पुत्र कुमार भीमसिंह बैठे थे। दोनों के मध्य बीच-बीच में धीमे बातें हो रही थीं। कुछ सरदार कान लगा कर बातें सुन रहे थे और कुछ खाने में लगे हुए थे।

"बादशाह आलमगीर से जो यह नई संधि हुई है, यह हम दोनों के लिए शुभ है। अब देखना यही है कि धूर्त्त बादशाह उसका पालन करता भी है, या नहीं।" महाराणा ने सहज गम्भीर स्वर में कुंवर भीमसिंह से कहा।

कुमार ने कुछ खिन्न होकर कहा—"रावरी जैसे मर्जी हुई, वही हुआ। परंतु आलमगीर पर कभी विश्वास नहीं किया जा सकता। वह पूरा धूर्त्त और दुष्ट आदमी है।"

महाराणा ने जरा ऊंचे, किंतु मृदु स्वर से कहा—"इस संधि से दो शत्रु परस्पर मित्र हो जाएंगे, देश की बिगड़ी हुई दशा सुधरेगी। कृषि-व्यापार और व्यवस्था ठीक होगी। देश में अमन-अमान कायम होगा।"

एक सरदार ने खाते-खाते कहा, "घणी खम्मा अन्नदाता, हम तो चारों तरफ से लूट-मार और जुल्म के समाचार सुन रहे हैं। संधि हुए अभी एक

मास भी नहीं हुआ, कई घटनाएं हो चुकी हैं। गरीब किसानों के खेत उजाड़े और गांव जलाए जा रहे हैं।"

महाराणा ने जलद-गम्भीर ध्वनि से कहा––"इन सब शिकायतों को लेकर पारसौली के राव केसरीसिंह बादशाह के पास भीम-के-थाने, शाही छावनी गये हैं। जब तक उसका जवाब नहीं आ लेता, उनके विरुद्ध कुछ राय कायम करना ठीक नहीं।"

कुँवर भीमसिंह ने लाल-लाल आंखों से महाराणा की ओर देखकर कहा––"और इसका क्या कारण है कि एक महीना होने पर भी बादशाह ने यहाँ से छावनी नहीं उठाई ?"

पुत्र का रोष देख महाराणा हंस दिए। उन्होंने कुँवर की पीठ थपथपा कर कहा––"गुस्सा मत करो मेरे वीर पुत्र, इतना बड़ा बादशाह अपनी जिम्मेदारी को भी तो समझेगा।"

"परन्तु उसका विश्वास नहीं किया जा सकता। उसने अभी तक छावनी क्यों नहीं तोड़ी ? महाराज, दिल्ली के बादशाह से ईमानदारी की आशा रखना व्यर्थ है। मुझे भय है कि वह अवश्य षड्यंत्र रच रहा है।" कुमार ने उसी तीखे स्वर में कहा।

महाराणा एकाएक गम्भीर हो गए। उन्होंने कहा––"उसे ईमानदारी सीखनी होगी। संधि संधि है। देश में शांति और सुव्यवस्था बनाए रखने के लिए...।"

महाराणा की बात मुंह की मुंह ही में रह गई। धड़ाके से कमरे का द्वार खुला और धूल, गर्द से लथपथ एक आदमी हवा के झोंके के साथ गिर पड़ा। गिरते ही उसने आर्त्तनाद के स्वर में कहा––"दुहाई अन्नदाता की, क्या आपने कुछ सुना है ?"

महाराणा के हाथ का कौर हाथ में रहा। कुंवर ने पूछा––"कहो-कहो, क्या हुआ ?"

"महाराज, राव केसरीसिंह को कैद कर लिया गया और उनके साथियों

के सिर काट डाले गए। श्रीमान, उन्हें बड़ा धोखा दिया गया। विश्वासघात करके उन्हें भीतर बुला लिया गया, पीछे बीस आदमी उन पर टूट पड़े। अकेले वीर ने सबसे लोहा लिया, पर एक आदमी बीस के सामने कैसे ठहरता ? वह घायल होकर बन्दी हुए। महाराज, बड़ी कठिनाई से सन्देश लेकर आया हूं। उन्हें कल प्रातःकाल सूर्योदय होने पर कत्ल कर दिया जाएगा। उन्हें सेनापति रुहिल्लाखाँ बारह सौ सवारों की रक्षा में बदनौर के किले में ले गए हैं।"

"कत्ल ? कल सूर्योदय पर ?" कुमार भीमसिंह हाथ का कौर छोड़कर उठ खड़े हुए। सभी सरदार भोजन छोड़कर खड़े हो गए। कुमार ने मुट्ठी कस कर कहा—"यह असंभव है, अब हम संधि की मर्यादा नहीं रख सकते।"

सब सरदार एक स्वर से चिल्ला उठे—"कभी नहीं। चलो, अभी हम केसरीसिंह को छुड़ाएंगे।" कुमार की काली-काली आंखों से आग बरसने लगी और वह क्रोध से थर-थर कांपने लगे।

महाराणा अभी तक चुप थे। उन्होंने गंगाजल से आचमन किया, अन्न को पाग पर चढ़ाया। और तलवार सूतकर कहा—"मैं संधि को रद्द करता हूं। वीरो, केसरीसिंह ने एक बार सिंह से मेरी प्राण-रक्षा की थी। वैसे भी वह मेरी भुजा है। इसके सिवा संधि और विग्रह का अभिप्राय यह है कि प्रजा अभय हो। केसरीसिंह को छुड़ाने का बीड़ा कौन लेता है ?"

कुंवर भीमसिंह ने कहा—"महाराणा, यह दास राव केसरीसिंह को लाकर अन्न-जल ग्रहण करेगा।"

इसके बाद उसने सरदारों की ओर लक्ष्य करके ललकार कर कहा—"ठाकरां, कौन-कौन हमारे साथ जाएगा ?"

सब चिल्ला उठे—"महाराणा की जय। हम सभी तैयार हैं।"

महाराणा ने हर्षित हो अपनी तलवार कुमार की कमर में बांध दी और वह वीर दल-दर्प के साथ चल दिया।

वासंती वायु आधी रात के सन्नाटे में शिशिर के झोंके दे रही थी। अभी वर्षा हो चुकी थी। पथरीली धरती में कहीं-कहीं पानी भरा था। सड़कें साफ

न था और बहुत अंधेरी रात थी। चारों तरफ उजाड़ वन था। कुछ फासले पर खड़े हुए नंगे पर्वत बहुत भयानक प्रतीत हो रहे थे। बदनौर का किला सामने दूर दिखाई दे रहा था। उस घनी अंधेरी रात में वह काले भूत की भांति प्रतीत हो रहा था। उसी पथ पर एक छोटे से कद का आदमी अकेला ही घोड़े पर सवार, इधर से उधर चौकन्ना होकर देखता हुआ, बड़ी सतर्कता से आगे बढ़ रहा था। उसकी घनी काली दाढ़ी, झब्बेदार साफा और चमकीला जिरहबख्तर तथा कीमती अरबी घोड़ा साफ बता रहा था कि वह कोई उच्च-पदस्थ मुगल सरदार है। वह अपने असील काले घोड़े पर चढ़ा हुआ उस कीचड़ भरे, पथरीले, सुनसान ऊबड़-खाबड़ मार्ग पर धीरे-धीरे चल रहा था। कभी वह ठंड से काँप उठता, कभी घोड़े की ठोकर से विचलित हो जाता। प्रतिकूल वायु तीर की भाँति उसे बेध रही थी। हवा के ठंडे और दुःखदायी थपेड़ों से बचने के लिए उसने अपनी कमर से कमर-पट्टा खोलकर मुँह पर लपेट लिया था। केवल उसकी आँखें और नाक का अग्रभाग ही बाहर निकला हुआ था।

एकाएक घोड़ों की टापों की आहट सुनकर वह चौंका। थोड़ी देर में देखा, सामने कुछ सवारों का दल आ रहा है। कुछ ही देर में उसने उनकी चमचमाती तलवारों और भालों की झलक देखी। वह हटकर झाड़ी में छिप कर खड़ा हो गया। एक-एक करके सवार सामने आए। सबके आगे कुँवर भीमसिंह थे। वह मुश्की घोड़े पर सवार, सीना ताने, चारों तरफ देखते हुए आगे बढ़ गये। उनके पीछे के सवारों को मुगल ने गिना। कुल दस थे। उसका माथा सिकुड़ गया। उसने भुनभुनाकर कहा—'या खुदा, खुद कुमार भीमसिंह इस आधी रात में कहाँ जा रहे हैं! इस बेवक्त के सफर का क्या मतलब?'

सवार आगे बढ़ गए। वह भी अपने रास्ते पर चला। आधा मील जाने पर उसने फिर घोड़ों की टापें सुनीं। बहुत तेजी से दल आगे बढ़ रहा था। मुगल झाड़ी में छिप गया। सवार सामने होकर गुजरने लगे। कुल दस सवार थे। सब सिर से पैर तक हथियारों से लदे हुए थे। उनके आगे श्वेत

रंग के ऊंचे घोड़े पर जो व्यक्ति था, उसे देखकर इस मुगल के छक्के छूट गये। उसने फिर भुनभुनाकर कहा—'खुदा ! महाराणा भी इन चुनींदा सवारों के साथ हैं ? जरूर आज किलेदार की खैर नहीं है।"

वह जरा तेजी से आगे बढ़ा। कुछ ही देर में उसे फिर घोड़ों की टापों का शब्द सुनाई दिया। उसने देखा कि तीसरे दल में भी दस थे। सबके घोड़े कीमती थे, परन्तु इनके पास हथियारों के स्थान पर कुदाल और पत्थर तोड़ने के हथौड़े थे। मुगल ने साहस करके पूछा—"भाइयो, इस रात में कहाँ जा रहे हो ? क्या बदनौर के किले में कुछ काम करने के लिए तुम्हें बुलाया गया है ?"

एक ने हंसकर कहा—"हाँ जी, एक पहाड़ी कौए का घोंसला तोड़ना है। वह बदनौर के क़िले में ही है।" बोलनेवाला ही-ही करके हंस दिया। वे आगे बढ़ गए। किसी ने पीछे फिरकर नहीं देखा।

मगर वह मुगल कुछ देर वहीं खड़ा सोचता रहा। उसने मन-ही-मन भुनभुनाकर कहा, 'आसार अच्छे नजर नहीं आ रहे हैं। मुझे किले में लौटना ही पड़ेगा और किलेदार को इस आने वाली मुसीबत से सावधान करना पड़ेगा। उसने घोड़ों की टाप सुनी और क्षण-भर में फिर दस सवार हथियारों से लेस उसके सामने होकर गुजर गए। अब उसने अपना कर्त्तव्य-निर्णय कर लिया और फिर किले की ओर लौट पड़ा।

उधर राजपूत वीरों के दल ने शीघ्र किले के पृष्ठ भाग के नीचे दीवार पर कीलें ठोक कर चढ़ना आरम्भ किया। निस्तब्ध रात्रि में किले के प्रहरी इस भाग में नहीं थे। सबसे पहले कुंवर भीमसिंह ने किले की प्राचीर पर पैर रखा और चढ़कर रस्सी को बुर्ज में बांधकर नीचे लटका दिया। रस्सी के सहारे सब योद्धा ऊपर पहुँच गए। महाराणा और उनके साथी दस वीर नीचे ही शत्रु की गतिविधि पर नजर रखने को रह गए।

सब वीरों ने तलवारें सूंत लीं और किले के प्रांगण की ओर बढ़े। वहां कुछ प्रहरी अलसाई अवस्था में बैठे ऊंघ रहे थे। सबको काट डाला। उनमें से एक को तलवार की नोक पर बन्दी-गृह का द्वार दिखाने को विवश किया गया।

बन्दीगृह में कैदी सुख से खर्राटे ले रहा था। द्वार-भंग के धमाके से उसकी आँखें खुल गईं थीं। वह उठकर चटाई पर बैठ गया।



"सूर्योदय पर तुम कत्ल किए जाने वाले हो, और इस समय सुख की नींद सो रहे हो ?" कुमार भीमसिंह ने कहा। बन्दी खिलखिला कर हंस पड़ा।

केसरीसिंह ने कुमारके स्वर को पहचानकर कहा—"असम्भव है, जब तक आप-जैसे स्वामी मेरे रक्षक हैं।" उसने अपनी टांगें फैला दीं और हाथों

को ऊपर फैला दिया। भारी-भारी बेड़ियां और हथकड़ियाँ झनझना उठीं।

"उठो-उठो, अभी हमें बहुत काम करना है।" कुमार ने केसरीसिंह को पकड़कर उठाया। पर उन भारी बेड़ियों ने उसे उठने न दिया। परन्तु कुमार ने केसरीसिंह को तुरन्त उठाकर अपने कंधों पर बिठा लिया।

सब उसी प्रकार प्राचीर पर आकर रस्सी के सहारे नीचे उतर पड़े। नीचे आकर कुमार ने केसरीसिंह को कंधे से उतारकर कहा—'बड़ा उजड्ड सवार रहा यह।" सब खिलखिला कर हंस पड़े। ••

मारवाड़ का शेर

अमरसिंह राठौर का जीवन, अतीत राजपूती जीवन का एक चरम कोटि का ज्वलंत उदाहरण है। यह उद्ग्रीव जाति वीरत्व की जैसी उत्कृष्ट श्रेणी पर पहुंच चुकी थी, आज उसका हम विचार भी नहीं कर सकते। त्याग मनुष्य की उच्चता है, परन्तु प्राणों का त्याग सब त्यागों में श्रेष्ठ है। उसी प्राण को क्षत्रिय अनायास ही युद्ध-भूमि में त्याग देते हैं, इसलिए क्षत्रित्व मानवीय जाति का सर्वोच्च विकास है।

उस समय राठौरों की एक गद्दी नागौर में थी। अमरसिंह के पिता महाराव गजसिंह जोधपुर के महाप्रतापी और वीर राजा थे। उन्होंने बादशाह जहाँगीर के लिए ५२ युद्ध विजय किये थे और पांचहजारी जात तथा पांच हजारी मनसब का ओहदा तथा महाराज की पदवी शाही दरबार से प्राप्त की थी। बादशाह ने उनके घोड़ों पर मुहरें दागना बन्द कर दिया था। वे जैसे वीर थे वैसे ही दानी भी थे। उन्होंने १४ कवियों को १४ लाख रुपए दान किये थे। जोधपुर का सारा खजाना कवियों और वीरों को दान देने में खाली होता रहता था।

इन महाराज के तीन पुत्र हुए, जिनमें मंझले अचलदासजी बाल्यावस्था में ही मर गए थे। बड़े अमरसिंह थे। छोटे प्रबल प्रतापी यशवन्तसिंह थे, जिनकी तलवार का लोहा काबुल तक माना गया था।

जब महाराज गजसिंह बादशाह जहाँगीर की सेवा में लाहौर गये, तब अमरसिंह को भी साथ ले गये थे। उन्होंने बादशाह से कह-सुनकर अमरसिंह के लिए अलग मनसब और साढ़े चार लाख रुपया सालाना की जागीर उनके नाम चढ़वा दी थी, तथा जोधपुर राज्य का उत्तराधिकारी अपने छोटे पुत्र यशवन्तसिंह को बना दिया था।

अमरसिंह अत्यन्त उद्धत स्वभाव के थे। वे बड़े हठी, बात के धनी और प्रचंड प्रकृति के पुरुष थे। उनके उद्धत स्वभाव से नाराज होकर एक बार महाराजा गजसिंह ने उन्हें त्याज्य पुत्र करार दे दिया और देश त्याग देने की आज्ञा दी। इस पर अमरसिंह आगरा चले आये और बादशाह शाहजहां के दरबार में रहने लगे। बादशाह ने उन्हें दरबार में स्थान और सेना में पद दिया तथा नौमहला महल रहने को दिया। इसके पाँच वर्ष बाद महाराजा गजसिंह भी आगरा आए और अचानक बहुत बीमार हो गए। उनके रोगी होने का समाचार सुन शाहजहाँ उन्हें देखने को आया। तब महाराजा ने अपने कनिष्ठ पुत्र यशवन्तसिंह को अपना उत्तराधिकारी स्वीकार करने को बादशाह और सरदारों से अनुरोध किया। शाहजहाँ ने महाराज का अन्तिम अनुरोध स्वीकार कर लिया और बादशाह ने यशवन्तसिंह को चारहजारी जात व तीनहजारी सवारों का मनसब और खिलअत देकर मारवाड़ का राज्य सौंप दिया। अमरसिंह को तीनहजारी जात और तीनहजारी सवारों का मनसब देकर महाराज की उपाधि दी। साथ ही नागौर की जागीर का परवाना भी दे दिया। इसके बाद आगरा ही में महाराज गजसिंह की मृत्यु हो गई।

उस समय अमरसिंह की आयु पच्चीस वर्ष और यशवंतसिंह की तेरह वर्ष की थी। महाराज अमरसिंह को जब नीले रंग के घोड़े पर सवार कराकर राज्याधिकारच्युत करके देश-निकाला दिया गया था, तब बहुत-से वीर राठौर

उनके साथ ही निकल चले थे। उनमें इनका साला अर्जुन गौड़ भी था। आगरा आकर अमरसिंह ने बादशाह के लिए कई युद्ध विजय किए। उन्होंने दक्षिण और बुन्देलखण्ड के युद्धों में मराठों और बुन्देलों से मार्के के युद्ध कर विजय प्राप्त की। शाह शुजा के साथ युद्ध करने काबुल भी गये। अमरसिंह की वीरता, उनका उग्र स्वभाव और भयानक क्रोध सर्वत्र ही प्रसिद्ध हो गया। उनकी आंखें देखकर बड़े-बड़े वीरों के कलेजे कांप जाते थे। उनके साथ चुने हुए बांके वीर भी बहुत थे। उन्हीं वीरों में एक वीरवर बल्लूजी चम्पावत भी थे, जो बड़े भारी योद्धा थे।

अमरसिंह बादशाह के पास दिल्ली या आगरा रहते थे, परंतु कभी-कभी नागौर में भी रहा करते थे। अमरसिंह को मेढ़े पालने का बड़ा दुर्व्यसन था। वे मेढ़े लड़ाया भी करते थे। जब उनके मेढ़े वन में चरने जाते, तब उनके ताजीमी सरदारों को बारी-बारी से उनकी रक्षा के लिए साथ जाना पड़ता था। बल्लूजी चम्पावत राव जी के अत्यन्त कृपापात्र थे। परंतु जब उनकी बारी आयी, तब उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि मेढ़े चराना हमारा काम नहीं है। यह सुनकर अमरसिंह ने ताने से कहा, "ये तो पातसाही धड़ मोड़ेंगे, मेढ़े चराने क्यों जायेंगे !" अर्थात् ये तो बादशाही सेना का नाश करेंगे, मेढ़े क्यों चरायें ! इसके बाद क्रुद्ध होकर उन्होंने उनकी जागीर जब्त कर ली।

बल्लू जी तुरन्त वहां से चल दिए और कुछ दिन बीकानेर और उदयपुर रहकर अन्त में बादशाही दरबार में जा पहुंचे। वहां वे सम्मानपूर्वक रहने लगे।

अमरसिंह की जागीर नागौर का सिवाना बीकानेर के सिवाने में मिला हुआ था। बीकानेर के राजा कर्णसिंह भी बड़े वीर, कवि और प्रतापी थे। दुर्भाग्य से एक बार एक मतीरे (तरबूज) की बेल नागौर की हद में उगी और बीकानेर की सरहद में फैल गई और फल भी उसका बीकानेर की हद में लगा। उस साधारण मतीरे के एक फल पर बीकानेर और नागौर के आदमियों में झगड़ा हो गया। नागौर वाले कहते थे यह मतीरा हमारा है, क्योंकि इसकी

बेल हमारी हद में उपजी है। परन्तु बीकानेर के लोगों का कहना था—यह मतीरा हमारा है, क्योंकि हमारी हद में फला है। यह विवाद बढ़ते-बढ़ते दोनों राज्यों के राजाओं तक पहुंचा। दोनों तरफ की सेनाएं आ जुटीं और अच्छा-खासा युद्ध हुआ, जिसमें बीकानेर वाले विजयी हुए और मतीरे को ले गए। अमरसिंह ने जब आगरा में अपनी सेना की हार का सन्देश सुना, तब वे क्रोध में भभक उठे और तुरन्त नई सेना सरहद पर भेजकर आज्ञा दी कि जैसे भी मुमकिन हो, मतीरा छीन लाना चाहिए। बात आगे बढ़ती देख महाराजा कर्णसिंह ने बख्शी सलावतखां के द्वारा बादशाह को अर्जी भेजी कि वे इस मामले में मध्यस्थ होकर फैसला करें। बख्शी सलावतखां वास्तव में महाराजा कर्णसिंह का मित्र था। उसके उद्योग से बादशाह ने अब्दुल अजीज नामक एक ईमानदार आदमी को अमीन बनाकर सरहद पर भिजवा दिया, साथ ही दोनों राजाओं को अपनी सेनाएं वापस बुलाने की आज्ञा भी दे दी, परन्तु अमरसिंह ने इस आज्ञा को मानने से साफ इन्कार कर दिया।

इसी समय एक और भी घटना हो गई। शाही दरबार में यह भी नियम था कि प्रत्येक दरबारी-उमराव को बारी से बादशाह की ड्योढ़ियों पर पहरा देना पड़ता था। बड़े-बड़े राजा और सरदारों को अपनी छावनी डालकर ड्योढ़ियों पर हाजिर रहना पड़ता था। अमरसिंह को जब ड्योढ़ियों पर पहरा देने की आज्ञा हुई, तो उन्होंने क्रोधपूर्वक इन्कार कर दिया। इन सब बातों से सलावतखां द्वारा कान भरे जाने से बादशाह शाहजहां बहुत अप्रसन्न हो गया और अमरसिंह पर सात लाख रुपये का जुर्माना कर दिया।

दूसरे दिन अमरसिंह शाही दरबार में पहुंचे और गम्भीरता से आगे बढ़ कर बादशाह को बिना कोर्निश किये अपनी जगह पर जा खड़े हुए।

बादशाह ने कुछ देर छिपी नजर से अमरसिंह को देखकर कहा—'हम नागौर के राजा अमरसिंह से यह जवाब तलब करना चाहते हैं कि उसने किस लिए शाही नौकरी और हुक्म से इन्कार किया और दरबार में आकर अदब नहीं बजाया ?'

"जहांपनाह, अमरसिंह सल्तनत के लिए पलक झपकते तलवार चलाने से नहीं चूकेगा, पर ड्योढ़ी की नौकरी की बात जुदा है।'

'हमने हुक्म जारी किए थे।'

'मैं जहांपनाह से अर्ज करूंगा कि हुक्म सोच-समझकर दिए जायें और यह दस्तूर बदल दिया जाय।'

'क्या और राजा लोग चाकरी नहीं बजाते ?'

'जहांपनाह, उन्होंने अपनी गैरत बेच खाई है। वे राजपूत-कुल-कलंक हैं। राठौर कभी यह अपमान नहीं सह सकते।'

सलावतखां ने बादशाह को स्मरण कराते हुए कहा—

'खुदावन्द, बीकानेर के राजा कर्णसिंह ने शाही हुजूर में अर्जी दी थी कि राजा अमरसिंह ने बिना वजह मामूली-सी बात पर उनसे रार ठानी है।'

'वह मामूली वजह क्या है ?'

'जहांपनाह, एक मतीरे की बेल झगड़े की जड़ है। कहते हैं कि उसकी जड़ नागौर की धरती में उगी थी, मगर फल बीकानेर की धरती में लगा था। उस फल का मालिक कौन हो, यही झगड़े की बात है। दो राजाओं के बीच महज़ इस मामूली-सी बात पर झगड़ा होना मुनासिब नहीं, जहांपनाह !'

बादशाह ने अमरसिंह से पूछा—'क्या यह सच है ?'

'सच है जहांपनाह !'

सलावतखां ने फिर कहा—'जहांपनाह, शाही हुक्म दिया गया था कि दोनों फरीक अपनी-अपनी फौजें वहां से हटा लें।'

"क्या उस हुक्म की तामील हुई ?'

'नहीं हुजूर, अमीन वहां भेज दिया गया है। राजा कर्णसिंह ने तो अपनी फौजें वापस बुला ली हैं, मगर राजा अमरसिंह शाही हुक्म से इन्कार करते हैं।'

बादशाह ने गुस्सा होकर अमरसिंह से पूछा—'राजा अमरसिंह का क्या जवाब है ?'

'जहांपनाह को मेरे इस घरेलू मामले में दखल देने की कोई आवश्यकता नहीं है।'

'हमारा हुक्म है कि आप अपनी फौज फौरन वापस बुला लें।'

अमरसिंह ने दृढ़ता से कहा—'मैं चाहता हूं कि जहांपनाह अपना अमीन वापस बुला लें, वरना उसकी जान की सलामती का मैं जिम्मेदार नहीं।'

बादशाह ने गुस्से से लाल होकर कहा, 'बख्शी सलावतखाँ, राजा अमरसिंह को शाही हुक्म सुना दिया जाय।'

सलावत ने कोर्निश करके अमरसिंह से कहा—'राजासाहब, आपने शाही हुक्म मानने में गफलत की है, इसलिए आप पर सात लाख रुपये जुर्माना किया जाता है।'

अमरसिंह ने दर्प से कहा, "मैं यह जहांपनाह के मुँह से सुनना चाहता हूं।"

बादशाह ने क्रोध से कहा, 'हमारी यह मन्शा है।'

अमरसिंह ने हंसकर उत्तर दिया, 'बहुत अच्छा जहाँपनाह, यह जुर्माना कौन वसूल करेगा ?'

सलावत ने आगे बढ़कर कहा, 'अगर बादशाह सलामत हुक्म देंगे तो मैं यह शाही हुक्म बजा लाऊंगा।'

बादशाह ने सलावतखाँ से कहा, 'तुम्हें हुक्म दिया जाता है कि राजा अमरसिंह से जुर्माना वसूल करो।'

सलावतखाँ ने व्यंग्य से कहा, 'राजा अमरसिंह, आप राजी से जुर्माना अदा करेंगे या आपके मकान पर कुर्की लाई जाय ?'

अमरसिंह ने क्षणभर सलावत को देखा, फिर कहा—'खाँ साहब महल तक जाने की क्या जरूरत है, जुर्माना अमरसिंह के साथ है। जिसकी माँ ने धौंसा खाया हो, अभी वसूल कर ले।'

उन्होंने कटार म्यान से खींचकर हाथ में ले उसे दिखाकर कहा, 'इस असील लोहे की धार पर रखकर जुर्माना अदा किया जाएगा।'

सारे दरबार में खलबली मच गई। सलावत ने कटार की उपेक्षा करके

कहा, 'राजा अमरसिंह, जुर्माना अदा कर दो और दरबार के अदब का खयाल रखो ।'



अमरसिंह ने लाल आँखें करके कहा, 'ले जुर्माना...'

सलावत ने डांटकर कहा, 'चुप गंवा......'

वह पूरा 'गंवार' शब्द कह भी नहीं पाया था कि अमरसिंह ने चीते की भाँति उछलकर कटार सलावत की छाती में ठूंस दी । सलावत चीत्कार

करता हुआ गिर गया। दरबार में भगदड़ मच गई, अदब भंग हो गया।

अमरसिंह ने जोर से कहा, 'जहाँपनाह, जुर्माने के रुपयों का बोझ जरा भारी था। मियाँ जी संभाल न सके। लीजिए, आप खुद संभालिये' यह कहकर, जोर से कटार बादशाह पर फेंककर मारी, परन्तु वह खम्भे से टकरा एक बालिश्त पत्थर काटकर गिर गयी। बादशाह 'मार डालो,' 'पकड़ लो' का हुक्म देकर खिड़की की राह महल में भाग गया।

अमरसिह ने जोर से कहा, 'यह राठौर अमरसिंह पाव सेर का लोहा हाथ में लिये निर्भय खड़ा है। मुगलों के वंश में जो कोई माई का लाल जन्मा हो वह जुर्माना वसूल कर ले।'

चारों ओर से हथियारबंद सैनिक आकर अमरसिंह को घेरने लगे। इसी बीच स्वामिभक्त किसन नाई अमरसिंह का घोड़ा लेकर घुस आया और सिरोही अमरसिंह के हाथ में पकड़ाकर बोला, 'महाराज की जय हो, सेवक के रहते श्रीमान् को इन तुच्छ सिपाहियों से लोहा लेने की आवश्यकता नहीं। किले के सब द्वार बन्द हैं। श्रीमान् पश्चिम की फसील पर चढ़ जायें। मैं शत्रुओं को रोकता हूं।'

अमरसिंह उछलकर घोड़े पर सवार हो गए और हुल्लड़ को चीर-फाड़कर मारकाट करते मैदान में निकल आये और बुर्ज की ओर बढ़ने लगे। किसन सिपाहियों को रोकता हुआ घाव खाकर अमर हुआ। चारों तरफ से दरबारी लोग और सिपाही अमरसिंह पर टूट पड़े। परन्तु वे उसी कटार के बल पर शत्रुओं के सिर भुट्टों-से उड़ाते हुए बुर्ज तक आ गए और दबाकर एड़ दी। घोड़ा सिंह की भांति उड़ान भरकर बुर्जी पर आ गया।

अमरसिंह ने घोड़े को थाप देकर कहा—'रख ले बेटा राजपूती शान को।' फिर जो दोबारा एड़ दी, घोड़ा तीन फसीलों को फलांग कर बाहर मैदान में आ कूदा। घोड़ा तो वहीं ढेर रहा और अमरसिंह उठकर भाग गये और सहीसलामत नौमहले पहुँच गये।

शाहजहाँ यद्यपि भयभीत होकर दरबार से भाग आया था, परन्तु अमर-

सिंह की वीरता ने उसे मोह लिया था। उसने अर्जुन गौड़ को बुलाकर कहा कि अमरसिंह को समझा-बुझाकर दरबार में हाजिर करो, हम माफ कर देंगे।

अर्जुन गौड़ के मन में बहुत दिनों से अमरसिंह के प्रति रोष था। अब अवसर पाकर वह प्रसन्न हुआ और नौमहले जाकर अपनी बहन और अमरसिंह को समझा-बुझाकर उन्हें दरबार में आने को राजी कर लिया। अमरसिंह अपने साले पर विश्वास कर उसके साथ हो लिये और किले में जब वे झुककर ड्योढ़ी पार कर रहे थे, अर्जुन गौड़ ने विश्वासघात किया और पीछे से तलवार का वार करके उनका सिर काट लिया।

बादशाह ने अपने खास ख्वाजासरा से पूछा—'हम सब कुछ तफसील से सुनना चाहते हैं।'

'खुदावन्द, गुलाम ने आंखों से देखा बयान किया है।'

'क्या अमरसिंह राजी-खुशी ड्योढ़ियों तक आया था ?'

'जी हुजूर, अर्जुन उसे दरबार में माफी दिलाने का यकीन दिलाकर, कौल हारकर किले में ले आया था।'

'फिर क्या हुआ ?'

'उसने खिड़की की राह ज्यों ही झुककर भीतर कदम रखा कि अर्जुन ने पीछे से खट से तलवार से उसका सिर उड़ा दिया।'

बादशाह ने गुस्से से होंठ चबाकर कहा—'दगाबाज !'

'मगर बहादुर राठौर ने फूर्ती से कटार फेंककर मारी और अर्जुन की नाक काट डाली।'

'बेईमान नमकहराम कमीने की सजा।'

'बन्देखुदा, अब अर्जुन गौड़ अपनी कारसाजी का इनाम हासिल करने हुजूर की कदमबोसी हासिल किया चाहता है।'

'उस दोजखी कुत्ते को हाजिर करो।'

अर्जुन मुँह पर पट्टी बांधे, हाथ में अमरसिंह का सिर लिये आया और सिर पेश करके बोला—'जहाँपनाह, यह बागी अमरसिंह का सिर हाजिर है।'

बादशाह ने सिर देखकर शोकभरे स्वर में कहा–'अफसोस, एक बहादुर जवाँमर्द का इस तरह खात्मा हो गया !'

अर्जुन ने उत्साह से कहा–'हुजूर, इस सेवक को इस मुहिम में बड़ी बहादुरी खर्च करनी पड़ी ।'

बादशाह ने उसकी ओर देखा और कहा–

'हम तुम्हारी बहादुरी का पूरा हाल सुनना चाहते हैं ।'

'जहाँपनाह, मुझे जो-जो जौहर दिखाने पड़े, वह तो बयान से बाहर हैं । इस सेवक को इस बाग़ी को मारने के लिये जबरदस्त लड़ाई लड़नी पड़ी ।'

'शायद सबसे गहरा घाव तुम्हारी नाक ने खाया है और वह साफ उड़ गई है ।'

जहाँपनाह, छीना-झपटी में न जाने किसका खंजर लग गया और नाक कट गई ।'

'अमरसिंह की लाश कहाँ है ?'

'वह खिड़की में रखी है ।'

बादशाह ने क्रोध से कहा–'और अब तुम इनाम की ख्वाहिश से आये हो ?'

'जी, हाँ, हुजूर, बन्दे को बारह सौ गाँवों का पट्टा और अमरसिंह वाला रुतबा इनायत हो ।'

'इत्मीनान रखो । तुम्हारी काबलियत और खिदमत की कद्र की जायगी ।

बादशाह ने एक मुसाहिब से कहा—'इस बदनसीब दोज़खी कुत्ते से कहो कि उच-सच सारा माजरा हमारे हुजूर में बयान करे । इसने किस तरह अपने लगे रिश्तेदार अमरसिंह को धोखा दिया । सच-सच बयान करे । अगर झूठ बोलेगा तो ज़िन्दा ज़मींदोज़ कर दिया जायेगा ।'

अर्जुन ने गिड़गिड़ा कर कहा—'जहांपनाह, गुलाम की जां-बख्शी हो । नमकहलाली के ख्याल से मैंने यह काम किया ।'

'तुमने अमरसिंह को धोखा दिया ।'

'खुदावन्द, ऐसा ही किया ।'

'तुम उसे माफी दिलाने के कौल-करार करके लाये थे ?'

'मैंने ऐसा ही किया था जहांपनाह ।'

'तुम दग़ाबाज़ और नमकहराम ही नहीं हो, बल्कि कमीने गुनहगार हो । तुम्हारे जैसे गुनहगारों को माफ करना और रहम करना इन्साफ का गला काटना है । अमरसिंह तख्त का दुश्मन न था । उसका कसूर महज यही था कि वह अपनी फज़ीहत बर्दाश्त नहीं कर सकता था । वह एक जवांमर्द बहादुर था ।'

उसने ख्वाजासरा को हुक्म दिया—'इस दोजखी को जल्लादों के सुपुर्द कर दो कि वे इसे जिन्दा जमींदोज़ कर दें ।'

ख्वाजासरा अर्जुन को पकड़कर ले गये और कत्ल कर डाला ।

बादशाह ने अमरसिंह की लाश को बुर्ज पर डलवा दिया और नौमहला दखल करने तथा खजाना जब्त करने का हुक्म दिया ।

नौमहले में जब यह दारुण समाचार पहुंचा तो हाहाकार मच गया । जो थोड़े-बहुत राजपूत वहाँ थे—वे अमरसिंह के भतीजे रामसिंह की अध्यक्षता में संगठित होकर लाश को बुर्ज से लाने को तैयार हुए । परन्तु यह कुछ साधारण बात न थी । असंख्य शाही सेना से घिरे किले से लाश ले आना सहज काम न था । पर लाश लाकर रानी को सती कराना आवश्यक था । यह काम मुट्ठी-भर राजपूतों की ताकत से बाहर था ।

अन्त में रानी को बल्लूजी चम्पावत का स्मरण हुआ । उन्होंने चलती बार आवश्यकता पड़ने पर काम आने का वचन दिया था—उसकी याद दिला कर रानी ने उनके पास खबर भेजी कि आप क्षत्रिय हैं तो अपने स्वामी की लाश लाकर हमें सती कराइए ।

बल्लूजी उस समय एक घोड़े की परीक्षा कर रहे थे । वह घोड़ा उसी समय उदयपुर दरबार ने उनके पास भेंट-स्वरूप भेजा था । वह एक असाधारण जानवर था, जिस पर सवारी लेने योग्य कोई वीर उदयपुर में न था । महाराणा ने लिखा था—जैसे राजपूतों में बल्लूजी दुर्धर्ष हैं—वैसे ही घोड़ों में यह घोड़ा

दुर्धर्ष है, इसी से आपके पास भेजा है।

बल्लूजी ने ज्योंही रानी का सन्देश सुना, वे तुरन्त नंगी पीठ उसी घोड़े पर सवार हो गये। उन्होंने दो तलवारें बांधीं। साथ में अपने अनुचरों को लिया और जो लोग उदयपुर से घोड़ा लाये थे उनसे कहा—'महाराणा जी की कृपा का बदला चुकाने का अब समय नहीं है। उन्हें हमारा जुहार कहना और कहना घोड़ा जैसा दुर्धर्ष है, वैसे ही दुर्धर्ष कार्य में जा रहा है।'

उन्होंने एड़ लगाई। असील घोड़ा हवा में उड़ चला। क्षण-भर में बूल्लूजी किले की पौर पर थे। हजारों तलवारें, बर्छियां, तीर बरस रहे थे। परन्तु वे बढ़ते ही गये। लाशों के तुमार लगा दिये और बुर्ज पर जाकर लाश को उठा लिया। लाश को घोड़े पर रखा, क्षण-क्षण पर साथी राजपूत एक-एक करके क्षीण हो रहे थे। बल्लूजी के शरीर से खून की धार बह रही थी।

शस्त्रों से उनका शरीर छलनी हो रहा था। उनके घोड़े की भी वही हालत थी। परन्तु अभी लाश निरापद नहीं थी। वे बढ़-बढ़ कर हाथ मार रहे थे। वे कराल काल की भांति रणांगन में देदीप्यमान हो रहे थे।

अन्त में उन्होंने लाश को रामसिंह के सुपुर्द करके कहा—'इसे नौमहले ले जाकर रानी को दे दो। जब रानी चिता में बैठ जायें और चिता में आग दे दी जाय तो तोप चला देना, तब मैं समझूंगा कि कर्त्तव्य-मुक्त हुआ।'

रामसिंह अपने वीरों को गांसकर लाश ले नौमहले की ओर बढ़ा। उसकी और उसके वीरों की तलवारें करामात दिखा रही थीं। रास्ते में रुंडमुंड लुढ़क रहे थे। उधर बल्लूजी पर्वत के समान मार्ग में अड़े थे—उनकी प्रतिज्ञा थी कि जब तक नौमहले से तोप का शब्द न हो जायेगा—वे मरेंगे नहीं, गिरेंगे भी नहीं। उनके चारों ओर लाशें ही लाशें थीं।

अन्त में सब कार्य सम्पन्न हो गए। लाश नौमहले पहुंच गई। चिता में आग दे दी गई। बाहर तलवारें झनझना रही थीं। भीतर से लाल लौ उठी और नौमहला धांय-धांय जलने लगा। तोप का शब्द हुआ। बल्लूजी की मुट्ठी ढीली हुई और तलवार छूट गई, फिर वे नक्षत्र की भांति घोड़े से गिरे। घोड़ा

भी वहीं अमर हुआ।

यह युद्ध बुखारा फाटक पर हुआ और बल्लूजी बेखतर लाश को ले गए। उसी दिन से वह फाटक शाही हुक्म से बन्द कर दिया गया तथा जिस बुर्ज से घोड़ा कुदाया था, उसे 'अश्व बुर्ज' अब भी कहा जाता है। कहते हैं कि बुखारा फाटक को जब-जब किसी ने खोलना चाहा, एक विषधर सर्प ने चूल से निकल कर उसे डस लिया। चिर काल तक लोग भय से उस फाटक के निकट नहीं गए। अन्त में सन् १८०८ में अंग्रेज कप्तान मिस्टर स्टील ने उस फाटक को खोला और वह सर्प वहां से निकलकर चला गया।

रणबंका राठौर

सम्वत् १७५३ की बात है। सिरोही के ऊबड़-खाबड़ और उजाड़ पहाड़ों की एक कन्दरा में इक्कीस वर्ष का एक युवक बहुत-सी लकड़ियां जलाकर उस पर एक समूचे हिरन को भून रहा था। उसके कपड़े मैले और फटे हुए थे। कहना चाहिये उनकी धज्जियां उड़ गई थीं। परन्तु इन दरिद्र वस्त्रों में भी उसका तेजस्वी मुख और लम्बी भुजाएं छिप न सकी थीं। उसकी चमकीली गहरी काली आंखें, उभरी हुई छाती, घुंघराले काले-काले बाल और ऊंचा मस्तक उसके असाधारण व्यक्तित्व को प्रकट कर रहे थे।

वह जो काम कर रहा था, मानो उसका उसे काफी अभ्यास हो गया था। वह हिरन को भूनता जाता था, साथ ही उस तंग और अंधेरी कंदरा को साफ भी करता जाता था। बड़ी तेज गरमी थी, दोपहर ढल चुकी थी, आग जलने से उसका मुँह लाल हो गया था। पसीना टप-टप टपक रहा था, फिर भी वह बराबर फुर्ती से अपने काम में लगा हुआ था। यह जोधपुर का छद्मवेशी भावी राजा अजीतसिंह था, जिसे जीता या मरा पकड़ने के लिए सारे राजपूताने

में बादशाह आलमगीर के जासूसों का जाल बिछा दिया गया था और जिसके सिर का मूल्य एक लाख रुपया था। वह दो मास से इसी पर्वत की उपत्यका



में छिपता फिर रहा था। उसके यशस्वी और वीर सरदार दुर्गादास मेवाड़ की सहायता से बादशाही छावनियों को लूटते-पीटते इस समय जालौर के किले को

घेरे पड़े थे। वहां से पल-पल में समाचार पाने की आशा थी। युवक राजा उत्सुकता से उसकी बाट जोह रहा था।

राजा बहुत भूखा था, परन्तु बेचैनी उससे भी ज्यादा थी। वह जल्दी-जल्दी अपना काम कर रहा था, साथ ही कभी-कभी गहरी सांस भी ले लेता था। अंत में उसने कुछ सोच कर एक लम्बी सांस ली, अपने बिखरे हुए बालों को गर्दन हिलाकर ठीक किया।

एकाएक उसे अपने पीछे एक परछाईं नजर पड़ी। उसने देखा, वीरवर मुकुन्ददास प्रसन्न-वदन खड़े कौतुक से राजा की कारस्तानी देख रहे हैं। उनके चेहरे पर श्वेत दाढ़ी और बड़ी-बड़ी आंखें मानो कुछ आनन्दप्रद मूक संदेश कह रही थीं। उन्होंने अपने विशालकाय बरछे को एक तरफ रखते हुए कहा—

"कुमार, इस गर्मी में आप इस खटपट में लग रहे हैं!"

अजीतसिंह खिलखिलाकर हंस पड़े, पर उन्होंने तुरन्त देखा कि मुकुन्द-दास के पीछे और भी कई व्यक्ति हैं। उनमें एक प्रौढ़ महिला, एक किशोरी बालिका और एक प्रभावान भद्र पुरुष भी हैं। राजा ने उत्सुकता से उनकी ओर देखा और फिर जिज्ञासा की दृष्टि से मुकुन्ददास की ओर ताकने लगे।

मुकुन्ददास ने विनय-पूर्वक कहा—"कुमार, यही मेडतिया के सरदार विजयसिंहजी हैं। धाय-मां ने आपसे सब बातें तो कही ही हैं। ये इनकी पत्नी और कन्या हैं। सरदार आपकी सेवा में कुछ शुभ संदेश लाए हैं, जो वह स्वयं ही निवेदन करना चाहते हैं।"

मुकुन्ददास यह कहकर, झुककर एक ओर हट गए। विजयसिंह ने आगे बढ़कर मुजरा किया और कहा—"महाराज की जय हो! आप तो जानते ही हैं कि यह दास बादशाह का मनसबदार है और बादशाह की ओर से बदनौर का किलेदार था। वह किला अब वीर श्रेष्ठ दुर्गादास ने विजय कर लिया है, और बादशाह आलमगीर दक्षिण में मर गया है।"

अजीतसिंह ने हर्षोल्लास से कहा—"विजय कर लिया है? यह आप क्या कह रहे हैं, बादशाह मर गया?"

"जी हां महाराज, वह किला अब उन्हीं के हाथ है। साथ ही सिवाना का किला भी मुगलों से छीन लिया गया है।" अजीतसिंह सुनते गए।

उसके बाद सरदार ने हंसकर कहा—"महाराज, किलेदार की प्रतिष्ठित नौकरी इस प्रकार छिन जाने से और बादशाह आलमगीर के मर जाने से यह सेवक अब बेघर-बार हो गया है। इसी से महाराज की सेवा में आया हूँ। यदि श्रीमान एक मुट्ठी अन्न...।"

अजीतसिंह खूब जोर से हंस पड़े। उन्होंने कहा—"एक मुट्ठी अन्न की खूब कही! यहां आठ दिन से एक दाना नसीब नहीं हुआ। परंतु हानि नहीं, आप क्षत्रिय ही हैं। आखेट उपस्थित है। बैठिए, एक बार तो अच्छी तरह पेट की ज्वाला बुझाई जाय।"

मुकुन्ददास हंस पड़े। उन्होंने सरदार का हाथ पकड़ कर कहा—"बैठिये सरदार, महाराज के साथ आपको भोजन करना ही पड़ेगा।"

अब इतनी देर बाद अजीतसिंह का ध्यान महिलाओं की ओर गया। उन्होंने बालिका को एक छिपी नजर से देखा। वह नवीन केले के पत्ते समान शुभ्र वर्ण वाली बालिका लाज से अपने ही में सिकुड़ी जा रही थी। एक बार अजीतसिंह ने अपने फटे वस्त्रों की ओर देखा। वह जरा मुस्कराकर महिला की ओर देख कर बोले—'आज मेरा अहोभाग्य है कि आप पधारी हैं। परंतु शोक है, आपके बैठने योग्य स्थान तक मेरे पास नहीं।' उन्होंने फिर उसका दोनों हाथ जोड़कर अभिवादन किया।

इसके बाद हंसकर मधुर स्वर में कहा—"विराजिए माता, मैं कोई भविष्यवाणी नहीं करना चाहता।" उसने एक बार कन्दरा पर दृष्टि फैलाई और कहा—"यह स्थान कदापि आपके योग्य नहीं, तथापि आप विराजिये तो!"

महिला एक कदम बढ़ी। उसने हंसकर कहा—"कुमार, तुमने सरदार की बात तो सुनी। मेरी भी सुनो तो मैं बैठूं।"

कुमार कुछ हंसे और जिज्ञासा की दृष्टि से महिला की ओर देखने लगे। महिला ने एक बार बालिका के सज्जन मुख की ओर देखा, फिर कहा—

"कुमार, ईश्वर तुम्हें विजयी और दीर्घजीवी करें। तुम्हें मेरी भेंट स्वीकार करनी ही होगी।"

"मैं आपकी सभी आज्ञाओं का पालन बिना विचारे करूंगा।"

महिला ने भेदभरी दृष्टि से सरदार की ओर देखा, फिर कन्या की ओर। इसके बाद कुमार की ओर देखकर हंस दी। कुमार ने झुककर महिला के चरण छुए। मुकुन्ददास हर्ष से चिल्ला उठे। सब भोजन करने बैठे।

: २ :

भोजन समाप्त कर सरदार विजयसिंह ने कहा—"अब मेरा निवेदन है कि आप एक क्षण भी यहां न रहें। क्योंकि जासूसों को आपका पता चल गया है और वे आपकी खोज में हैं।"

युवराज ने हंसकर कहा—"सो तो मैं दो महीने से सुनता आ रहा हूं।"

सरदार ने कहा—"अब हमें अत्यन्त गुप्त रूप से जोधपुर की ओर प्रस्थान करना चाहिए। ठाकुर दुर्गादास की भी यही सम्मति है। जोधपुर के निकट ही मेरे संबंधी का घर है, हम वहीं छिपकर कुछ दिन रहेंगे, और अवसर पाते ही किले पर धावा कर देंगे। महाराज को देखते ही राठौर एकत्र हो जायेंगे।"

मुकुन्ददास ने भी इस बात का समर्थन किया, परन्तु कहा—"किन्तु कुमार का खुले रूप में चलना आपत्ति से खाली नहीं है।"

महिला ने हंसकर कहा,—"मुझे एक उपाय सूझा है। यदि कुमार स्वर्णलता की सखी या दासी बनकर स्त्री-वेश में हमारे साथ धीरे-धीरे तीर्थ-स्थानों में घूमते-घूमते जोधपुर की ओर चलें, तो कैसा रहे ? यद्यपि यह बहुत कठिन और संकटमय है, पर हमें जल्द-से-जल्द जोधपुर पहुंच जाना चाहिए।" महिला का प्रस्ताव सुन अजीतसिंह ने घबराकर बालिका की ओर देखा—वह संकोच और लज्जा से दबी जा रही थी।

महिला ने कहा—"बेटी, यह राजा की प्राण-रक्षा का प्रश्न है, संकोच

से काम न चलेगा। तुम इनसे सखी के समान ही बात करना, जिससे किसी को संदेह न हो।"

अजीतसिंह हंस पड़े। उन्होंने कहा—"माता, मैं आपकी पुत्री की सेविका बनना अपना सौभाग्य समझूंगा, किंतु···।" उन्होंने अपने चीथड़ों की ओर देखा।

महिला ने कहा—"वस्त्रों का प्रबंध हमारे साथ है।"

"तब ठीक।" अजीतसिंह एक बार फिर हंस दिए।

एक घंटे बाद अजीतसिंह युवती दासी के वेश में स्वर्णलता के पीछे खड़े थे। सरदार ने कहा—"महाराज, याद रखिये, आप का नाम 'रत्नकुंवरि' है।"

"समझ गया, सरदार।"

महिला ने हंसकर कहा—"वाह आप क्या भूल गए कि आप पुरुष नहीं, स्त्री हैं, और मेरी कन्या की दासी हैं!"

राजा ने घूंघट सरकाकर कहा—"श्रीमती जी, दासी यह बात सदा याद रखेगी।

इस बार सब खिलखिलाकर हंस पड़े। सब लोग तीर्थ-यात्रियों के वेश में वहां से चल दिये।

: ३ :

तमाम दिन की कड़ी मंजिल तय करने के बाद, जब सूरज लाल-लाज मुंह किए पश्चिम में छिप रहा था, यह दल एक गांव की सीमा पर पहुंचा। विजयसिंह ने कुमार के निकट आकर कहा, "आप सब यहीं वृक्ष के नीचे ठहरें। यहां मेरे एक सम्बन्धी रहते हैं। आज की रात हम मजे में बिता सकते हैं, कोई भय नहीं।"

विजयसिंह यह कहकर भीतर गढ़ी में चले गए। थोड़ी देर में एक वृद्ध के साथ वह धीरे-धीरे आ रहे थे। वृद्ध की सफेद दाढ़ी हवा में लहरा रही थी।

डोलियों के निकट आकर विजयसिंह ने मुकुन्ददास का परिचय देकर कहा, "स्वयं महाराज अजीतसिंह भी सवारी में हैं, मुजरा कीजिए।" अजीतसिंह का नाम सुनते ही बूढ़े ठाकुर का मुँह भय से सफेद हो गया। उसने दोनों हाथ विजयसिंहजी के कंधे पर रखकर भयभीत स्वर में कहा, "ठाकराँ ! आप तो जानते हैं कि मैं महाराज का दासानुदास हूँ, परन्तु इस समय मैं इन्हें आश्रय नहीं दे सकता। मेरी समझ में यहां एक भी क्षण आपको नहीं ठहरना चाहिए।"

विजयसिंह का चेहरा क्रोध से लाल हो गया। उन्होंने तलवार की मूठ पर हाथ धर कर कहा, "ठाकराँ, महाराज आज यहीं अपने सेवक के यहां ठहरेंगे। क्या आप भूल गये कि आपको यह ठिकाना बड़े महाराज ने दिया था।"

"ठाकराँ, आप क्रोध क्यों करते हैं। आप मेरा मतलब समझे ही नहीं।" फिर धीमे स्वर में बोले, "गढ़ी में मुगल सेनापति ठहरे हुए हैं। यदि भेद खुल गया तो सब किया-कराया मिट्टी में मिल जाएगा। हम लोग उनका मुकाबला भी तो नहीं कर सकते।"

मुकुन्ददास आगे बढ़ आए। तीनों सरदार सलाह कर रहे थे। विजयसिंह ने चिंतित होकर कहा, "परन्तु हम आगे भी तो नहीं बढ़ सकते। सवारी और घोड़े सब दिन-भर के थके हैं। हम लोगों ने भोजन भी नहीं किया है।"

मुकुन्ददास ने कहा, "और भी एक बात है... हम लोग चुपचाप चले भी जायं, तो उसे खबर लगते ही वह हम पर शक करेगा। वह वास्तव में हमारी ही टोह में तो है।"

कुमार पालकी से निकलकर बोले, "आप लोगों के परामर्श में क्या मैं भी भाग नहीं ले सकता ?"

"आप कृपा कर भीतर विराजिए। बहुत ही गम्भीर स्थिति है। गढ़ी में मुगल सेनापति हैं।"

कुमार ने कहा, "जब सिर ओखली में दिया, तो डर काहे का ? आप लोगों को तो कुछ भय नहीं। चाचा पहचाने जा सकते हैं परन्तु वह आपके पुरोहित बन सकते हैं। और मैं तो आपकी दासी ही हूं।" कुमार एक बार फिर

हंस दिए।

निरुपाय सब कोई गढ़ी में घुसे। स्त्रियां और कुमार अन्तःपुर में भेज दिए गए। मुकुन्ददास चिंतित थे।

मुगल-सेनापति को तुरंत नवागन्तुकों के आने का पता लग गया। उसने तुरंत उन्हें बुलाकर बातचीत की और शराब का गिलास हाथ में लेकर कहा–"सो, आप लोगों को उस जालिया राजकुमार की रास्ते में कोई खोज नहीं मिली? कुछ परवाह नहीं, मैं उस चूहे को इस पहाड़ से ढूंढ़ निकालूंगा, पर वह बड़ा चालाक कुत्ता है।"

मुकुन्ददास की आँखों से आग निकलने लगी। पर विजयसिंह ने कहा–"जनाब, यह हमारे पुरोहितजी इल्म नजूम में बड़ी शोहरत रखते हैं, इनसे आप दर्याफ्त कीजिए, शायद पता चले।"

सेनापति हंस दिया। उसने अपना घमंड भरा चेहरा मुकुन्ददास की ओर फेरकर कहा, "क्यों बूढ़े, बता सकता है, वह काफिर कहां है?"

मुकुन्ददास ने लोहूका घूंट पीकर, मीन-मेख करके कहा—"वह यहीं नजदीक ही कहीं है!"

विजयसिंह कांपने लगे। मुगल सरदार ने जोर से कहा, "कसम खुदा की, मैं ईंट से ईंट बजा दूंगा। अच्छा, अब आप लोग आराम कीजिए।"

विजयसिंह की जान बची। दूसरे दिन प्रभात से ही यह दल फिर अपनी मंजिल पर था।

। ४ ।

दक्षिण-पूर्व की ठंडी हवा चल रही थी। दोनों सरदार घोड़ों पर और स्त्रियां पालकी में थीं। कुछ सिपाही ऊंटों पर और कुछ दासियां और सेवक बैलगाड़ियों पर थे। महाराज अजीतसिंह भी स्त्री-वेश में एक पालकी पर थे। उनमें एक दासी उनके साथ बैठी थी। सवारी जोधपुर की ओर बढ़ रही थी।

संध्या हो रही थी। पश्चिम में आकाश लाल हो रहा था। कहीं बादल

घूम रहे थे। सरदार विजयसिंह ने घोड़ा बढ़ाकर कुमार के बराबर किया और कहा, "यहाँ से बदनौर का किला अभी कोस-भर है। परंतु मुझे लक्षण ठीक नहीं प्रतीत होते। मालूम होता है, मुगलों का दल इधर घूम रहा है, आप सावधान रहें।"

कुमार ने पालकी का पर्दा उठा कर हंसकर कहा—"मैंने सिर्फ वेश ही स्त्री का धारण किया है, पर मैं रणबंका राठौर हूँ। रावजी, आप चिंता न करें, मुगल एक हो चाहे लाख मैं सभी को चीर कर फेंक दूंगा!"

"ठहरिए कुमार!" मुकुन्ददास ने आगे बढ़कर कहा—"वे लोग इधर ही आ रहे हैं। अभी आप चुपचाप पालकी में अपने स्त्री-वेश को निबाह कर बैठे रहिए। यह समय युद्ध का नहीं।"

इसके बाद वह इधर-उधर सावधानी से अपने पूरे काफिले के चारों तरफ एक चक्कर काट गए।

मुगलों के सरदार ने ललकार कर कहा, "यह किसकी सवारी है? सवारी रोक लो।"

विजयसिंह मुस्कराते हुए आगे बढ़े। उन्होंने कहा—"मैं तीनहजारी मनसबदार विजयसिंह हूं, तीर्थ-यात्रा से लौट रहा हूं।"

मुगल सरदार ने उद्दण्डता से कहा—तुम्हारा पर्वाना कहां है?

सरदार के उत्तर देने से प्रथम ही मुकुन्ददास आगे बढ़ आये। उन्होंने कहा, "कैसा पर्वाना आप चाहते हैं, खाँ साहेब?"

मुगल सरदार ने झल्लाकर कहा, "तुम लोगों में सरदार कौन है? वह जवाब दे, मैं जिस-तिस से बकवास नहीं किया चाहता।"

विजयसिंह फिर आगे बढ़े। मुकुन्ददास ने उन्हें पीछे ठेलकर सीना तान कर कहा, "सरदार मैं हूं, तुम क्या चाहते हो?"

मुगल सरदार आपे से बाहर हो गया। उसने कहा, "खुदा की कसम, मैं इतनी गुस्ताखी बर्दाश्त नहीं कर सकता। मुझे शक है। कमरुद्दीन, इन डोलियों के पर्दे उठाकर तलाशी लो।"

मुकुन्ददास और विजयसिंह ने तलवारें खींच लीं। दोनों डोलियों के सामने अकड़ कर खड़े हो गए। मुकुन्ददास ने आगे बढ़कर कहा, "जो आगे बढ़ेगा, दो टुकड़े हो जायगा।"

मुगलों ने भी तलवारें खोलीं। सरदार के सब साथी भी तलवार सूत-कर युद्ध को तैयार हो गए। महाराज अजीतसिंह चीते के समान छलांग मारकर बाहर निकल आए। उन्होंने लात मारकर एक मुगल सैनिक को घोड़े से गिरा दिया, और उसी की तलवार छीन दम-भर में उसके दो टुकड़े कर दिए।

मुकुन्ददास ने चिल्लाकर कहा, "कुमार! तुम डोलियों की रक्षा पर रहो।" इसके बाद वह उन इने-गिने साथियों को लेकर शत्रुओं पर टूट पड़े। अब गहरी लड़ाई छिड़ गई। मुगल बहुत थे। राजपूत तेजी से छीजने लगे। पर मुगलों की लाशों के भी अम्बार लग गए। मुगल सेनापति अपने को बचा-कर लड़ रहा था। वह स्वयं लड़ता कम था, औरों को अधिक उत्साहित करता था। वह बहुत-से चुनिंदा सिपाहियों के झुरमुट में खड़ा था।

मुकुन्ददास ने कहा, "हम लोगों को पास-ही-पास रहकर चौमुखी लड़ाई करनी चाहिए। दूर तक नहीं फैलना चाहिए।" इसके बाद सिर उठाकर अपने आदमियों को गिना। फिर कहा, "कुल ग्यारह हैं। छै मेरे साथ रहें, चार सरदार विजयसिंह के साथ पार्श्व में, और एक कुमार की रक्षा को डोलियों के पास।"

क्षण-भर ही में युद्ध घमासान हो गया। राजपूत बहुत कम थे। बहुत-से सैनिकों के कट चुकने पर भी मुसलमानों ने डोलियों को घेर लिया। कुमार ने चीते की भांति उछल-उछल कर मुगलों को चीरना शुरू कर दिया। एक तीर उनके कंधे को छेदता हुआ पार निकल गया। कुमार ने उसकी परवा न कर अपना भारी बर्छा फेंका। वह घोड़े-समेत मुगल सरदार को चीरता हुआ धरती में जा घुसा। मुगल सरदार ने घोर चीत्कार किया और ठंडा हो गया। इसी बीच में एक तीर कुमार के पैरों में घुस कर अटक गया। वह और भी बहुत घाव खा चुके थे, अतः उनका सिर घूमने लगा, और वह लड़खड़ा गए।

एक क्षण में भयानक संकट सामने आने वाला था।

इसी समय 'जय शंकर' का भीषण नाद हुआ और सैंकड़ों लपलपाती तलवारें मुगलों पर टूट पड़ीं। यह वीरवर दुर्गादास थे, जो किले के चारों तरफ के शत्रुओं की देख-भाल में गश्त लगा रहे थे।

थोड़ी देर की भीषण मार-काट के बाद, शत्रुदल को काट गिराया गया। इस युद्ध में कुमार के पैर में एक तीर लगा था, उसे उन्होंने खींचकर निकाल ड़ाला था। पैर से बहुत-सा खून निकल गया था, तो भी कुमार डोली के पार्श्व में खड़े तलवार चला रहे थे।

कुमारी ने कुमार के पैरों से रक्त का झरना झरते देखा। वह कुण्ठित हो बड़ी देर तक देखती रह गई, अंत में उससे न रहा गया। उसने मृदु कंठ से कहा—"आपके कंधे और पैर में बहुत घाव हैं, खून भी बहुत-सा निकल गया है, पट्टी बांध लीजिए, कमजोर हो जाएंगे।"

कुमार उस वीणा-विनन्दित सहानुभूति को सुनकर हंस दिए। उन्होंने तलवार चलाते हुए कहा—"कुमारी, क्षत्रिय पुत्र ऐसी बातों की चिन्ता नहीं करते, तुम जरा सावधान रहो! ऐसा न हो, कोई तीर आकर तुम्हें घायल कर जाय।"

कुमारी से न रहा गया। उसने उसी स्निग्ध स्वर में कहा, "मैं क्या क्षत्रिय कन्या नहीं?"

वह हठात् डोली से निकलकर कुमार के चरणों में बैठ गई। उसने अपना आंचल फाड़कर पट्टी तैयार की। इसी बीच युद्ध समाप्त हो गया। कुमार हंसकर वहां बैठ गए। कुमारी ने अपने कोमल हाथों से कुमार के पैर में पट्टी बाँध दी। इसके बाद कुमारी ज्यों ही नीची गर्दन करके उठी, कुमार ने उसके दोनों हाथ पकड़कर कहा—"कुमारी, तुम्हारी इस कृपा का जन्म-भर बदला चुकाने की चेष्टा करूंगा।"

कुमारी कंटकित हो गई। वह चुपचाप डोली में जा बैठी।

: ५ :

बदनौर के किले में सब लोगों ने विश्राम किया। फिर मंत्रणा सभा बैठी। निश्चय हुआ, कुमार कुछ साथियों सहित जोधपुर छद्म वेष में प्रवेश करें।

रात अंधेरी थी और आकाश में बादल दौड़ रहे थे। जिस समय इस छोटे-से दल ने जोधपुर की एक साधारण सराय में प्रवेश किया, वे एक परदेसी सौदागर बनकर गए थे। उन्होंने तुरंत ही फाटकों पर अधिकार करने की युक्ति सोच ली। रातोंरात वे अपना काम करते रहे।

उषा का अभी उदय नहीं हुआ था। संसार सुख की नींद सो रहा था और प्रात:कालीन ठंडी वायु के थपेड़े आनन्द दे रहे थे। इसी समय दुर्गादास की प्रबल सेना फाटक ढकेलती हुई जोधपुर में घुस आई। समस्त प्रहरी क्षणभर में काट डाले गए। दुर्ग पर दिन निकलते-निकलते अधिकार हो गया। मुगलों का एक भी बच्चा जीता न बच सका। शाही खजाना सब वहीं रहा। दुर्गादास ने सब पर अधिकार जमाकर तलवार ऊंची कर 'जय मरुधर अजीतसिंह महाराज' का जयनाद किया। सहस्रों राजपूतों की कण्ठध्वनि से पर्वत-श्रेणी कांप उठी।

नगर-निवासी आनन्द में उन्मत्त किले में जा रहे थे। मारवाड़ आज फिर स्वतन्त्र था। ●●

हठी हम्मीर

देलवाड़े के भग्न और नगण्य दुर्ग में आठ-दस योद्धा एक साथ बैठे किसी महत्त्वपूर्ण विषय पर परामर्श कर रहे थे। इनमें एक को छोड़कर शेष सभी प्रौढ़ पुरुष थे। सभी की घनी काली दाढ़ी और लाल-लाल आंखें एवं गम्भीर कण्ठ-ध्वनि यह सूचित कर रही थी कि ये प्रकृति से ही युद्ध के व्यवसायी हैं।

इनमें केवल एक ही व्यक्ति युवक था। वह उज्ज्वल गौरवर्ण, बलिष्ठ एवं सुन्दर व्यक्ति था। अभी छोटी-छोटी मूँछें उसके मुखपर सुशोभित हुई थीं।

यह युवक चित्तौड़ का प्रकृत अधिकारी महाराणा हम्मीर था। दिल्ली पति सुलतान के द्वारा चित्तौड़ विजय होकर शाही अधिकार में चला गया था और उस पर सुलतान की ओर से राव मालदेव किलेदार नियत होकर रहते थे।

महाराणा हम्मीर ने इस बीच में बारम्बार आक्रमण करके राव मालदेव और शाही सेना को अति त्रस्त कर रखा था। किसी क्षण उन्हें चैन न था। कब हम्मीर की तलवार सिर पर आ गरजे इसका कोई ठिकाना न था। आज उसी मालदेव ने हम्मीर के पास कन्या के विवाह का नारियल भेजा था। यह वीर-मंडली इसी पर विचार कर रही थी।

एक सरदार ने कहा, "अन्नदाता, इस सम्बंध में बिना भलीभांति सोचे-विचारे पैर रखना उचित नहीं। राव मालदेव नीच प्रकृति का पुरुष है, वह शत्रु है।"

दूसरे ने कहा, "उसके पास यथेष्ट सेना भी है, और हम इस समय पाँच सौ से अधिक वीर संग्रह कर ही नहीं सकते।"

तीसरे ने कहा, "जहाँ तक हमें ज्ञात है, राव मालदेव की कोई कुमारी कन्या है ही नहीं। यह नारियल-टीका निस्संदेह छल प्रतीत होता है।"

सबके अन्त में सबकी बात सुनकर हम्मीर हंस पड़े। उन्होंने कहा, "सरदारो, आप लोगों ने मुझे हठी तो प्रसिद्ध कर ही रक्खा है, पर अब समझ लीजिए कि मैं राव मालदेव की कन्या ब्याहकर अवश्य लाऊंगा और जैसाकि ठाकरों का कहना है कि उसके कोई कन्या ही ब्याह के योग्य नहीं है—यदि यही बात सच हुई तो मैं स्वयं मालदेव से भांवरें लूंगा और उस बूढ़े बकरे को वहीं हलाल भी करूंगा। आप लोग भय न करें। हम पांच सौ, पचास हजार के लिए बहुत हैं।"

। २ ।

चित्तौड़ के दुर्ग पर रंग-बिरंगी पताकाएं फहरा रही थीं। दुर्गद्वार पर

नौबत बज रही थी और स्वर्ण-कलश चढ़े हुए थे। सिंहद्वार से तनिक आगे बहुत-से घोड़े, हाथी, पालकी और सवार खड़े थे। सबसे आगे दुर्गस्वामी राव मालदेव अपने सरदारों-सहित सज-धजकर खड़े थे। सड़कों पर अनेक मंगल-सूचक चिन्ह बनाए हुए थे। बहुत-से लोग पैदल और सवार जल्दी-जल्दी प्रबन्ध करने के लिए दौड़-धूप कर रहे थे।

महाराणा हम्मीर उत्तम पीत परिधान पहने, एक अति चंचल घोड़े पर सवार थे। उनके कण्ठ में एक बड़ी-सी मोतियों की माला और सिर पर हीरे का एक जगमगाता हुआ तुर्रा था। उनके साथ श्वेत वस्त्र धारण किए, दो-दो तलवारें बगल में बांधे, साठ सरदार उन्हें घेरे धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। इनके पीछे पांच सौ सजीले शूर अपनी लाल-लाल आंखों से चारों तरफ घूरते हुए, भारी-भारी नंगी तलवारों को अपनी लौहमुष्टि में दबाए पंक्तिबद्ध आगे बढ़ रहे थे।

महाराणा प्रसन्नचित्त अपने सरदारों से धीरे-धीरे बातें करते चल रहे थे। उनका सुन्दर घोड़ा अठखेलियाँ करता, नाचता, उछलता बढ़ रहा था। प्रत्येक गति पर उसके पैर की झांझनें बजतीं और तुर्रे का हीरा बिजली की भाँति चमक उठता था।

लोग जहां-तहां खड़े होकर भय और आश्चर्य से इस अद्‌भुत दूल्हे और अनोखी बारात को देख रहे थे।

एक बूढ़ा और दुर्बल ब्राह्मण, मंडली को चीरकर आगे बढ़ा और राज-पथ पर उधर ही को जाने लगा जिधर से सवारी आ रही थी। वह पुरुष पतला और लम्बा था। वह एक रामनामी ओढ़े हुए था और उसे इस बात की कुछ परवाह न थी कि लोग उसके इस साहस और मूर्खता के विषय में क्या कह रहे हैं। उसके एक हाथ में आचमनी का पात्र और दूसरे में दूर्वादल था। वह ऐसी धुन में बढ़ा जा रहा था कि उसके सफेद और लम्बे-लम्बे केश उड़-उड़ अस्त-व्यस्त हो गए थे। परंतु इसका उसे कुछ ज्ञान ही न था।

ब्राह्मण ने निर्भय सवारी के सम्मुख जाकर दोनों हाथ उठाकर महाराणा

को आशीर्वाद दिया। दूर्वादल से आचमनी से गंगोदक ले घोड़े और महाराणा के मस्तक पर छिड़का। इसके बाद चंदन हाथ में लेकर कहा—"अन्नदाता की जय हो, यह पवित्र तिलक मैं श्री-मस्तक पर लगाऊंगा।"

महाराणा मुस्करा कर तनिक झुक गए, ब्राह्मण ने तिलक लगाया और साथ ही कान में कहा—"सावधान, आप मृत्यु के मुंह में जा रहे हैं, लौट जाइए।" इतना कह और उत्तर की बिना प्रतीक्षा किए वह तेजी से हट कर बगल की भीड़ में घुस गया।

क्षण-भर महाराज खड़े रहे। उन्होंने भेदभरी दृष्टि से निकटवर्ती सरदारों की ओर देखा, सरदारों में कानाफूसी होने लगी।

"अन्नदाता! विपद् सम्मुख है।"

महाराणा हंस दिए, बोले—"फिर भय क्या है! विपद् हमारा मनोरंजन और मृत्यु हमारा व्यवसाय है। ठाकरां, आज मातृभूमि के दर्शन तो नसीब हुए।" इतना कहकर उन्होंने घोड़ा बढ़ाया। सवारी धीरे-धीरे फिर आगे बढ़ी।

सिंहद्वार के निकट पहुंचते ही राव मालदेव और अन्य सरदारों ने आगे बढ़कर राणा का स्वागत किया तथा राणा से घोड़े से उतरने का अनुरोध किया। राणा ने राव का हाथ पकड़ कर कहा—"आपका यथेष्ट सम्मान करना कुल-रीति के अनुसार मेरा कर्त्तव्य है, आप हमारे साथ आइये।"

संकेत पाते ही ऐक सरदार अपने घोड़े से कूद पड़ा, और रावजी को अनायास ही उठाकर उसने अपने घोड़े पर रख लिया। इसके बाद राणा ने राव की ओर देख कर कहा—"विवाह-वेदी को छोड़ अन्यत्र भूमि पर पैर रखना हमारे कुल की रीति नहीं।"

रावजी को यह गुमान भी न था कि वे इस प्रकार एकाऐक शत्रु-दल से घिर जाएंगे। वे कुछ कर भी न सके। चुपचाप घोड़े पर बैठ गये। सवारी आगे बढ़ी और किले के सिंहद्वार में घुस गई।

राव मालदेव ने इधर-उधर देखकर कहा, "मेरी इच्छा है, पहले सब सरदार आराम कर लें। भोजन का सब सामान तैयार है।"

महाराणा के एक उमराव ने कहा—"हमारे कुल की रीति के अनुसार प्रथम विवाह-कृत्य सम्पूर्ण होना चाहिए। बिना कार्य हुए हम अन्न-जल नहीं ग्रहण कर सकते। आप कन्या को बुलाइये। पुरोहित और सब सामग्री हमारे साथ है।"

इतना कहकर वे सभी महल के आंगन में घोड़ों से उतर पड़े, और राव को बीच में घेरकर बैठ गये। द्वार को घेरकर पांच सौ वीर नंगी तलवारें लिए खड़े हो चुके थे।

राव साहब के प्राणों का संकट देख उनके सरदार घबरा गए, अभी एक क्षण में बुरा परिणाम हो सकता था। राव साहब का वहां से उठना असम्भव था। वे एक बार उठने भी लगे, पर एक सरदार ने उनका हाथ पकड़कर कहा—"आप अब बिना कन्यादान दिये कहाँ जाते हैं? कन्या बुलवाइये।"

वास्तव में राव मालदेव की विवाह-योग्य कोई कन्या थी ही नहीं, पर इस समय उनके प्राणों पर संकट देख, उनका संकेत पा, उनकी एकमात्र विधवा कन्या को दो-तीन सरदार मण्डप में ले आये। शीघ्र ही विवाह-कृत्य सम्पन्न हो गया। राव मालदेव चुपचाप सब कार्य देखते रहे।

इसके बाद वर-वधू को भीतर ले जाया गया, अब फिर राव साहब उठने लगे तो सरदारों ने फिर उन्हें रोक कर कहा—"हमारे कुल की रीति के अनुसार आज रात्रि-भर आपको हमारे डेरे में रहना और हमारा ही आतिथ्य ग्रहण करना होगा।" यह कहकर उन्होंने रावसाहब को हाथों-हाथ उठा लिया और बाहर चले आये।

: ३ :

रात्रि अन्धकार से परिपूर्ण थी और राजपूताने की प्रसिद्ध पहाड़ी हवा तेजी से चल रही थी। उसके पर्वतों से टकराने की ध्वनि मेघ-गर्जन की भांति सुनाई दे रही थी।

परन्तु किले के एक सुसज्जित कमरे में कुछ और ही समाँ बंध रहा

थी । महाराणा एक बहुमूल्य कारचोबी के चंदोवे के नीचे बैठे थे । कमरे में बढ़िया ईरानी कालीन बिछे थे, उसकी दीवारें फूलों से सजाई गई थीं । नाचने वालियाँ छमाछम नाच रही थीं, स्वर से माण्ड गा रही थीं ।

महाराणा के निकट ही रत्न और जरीदार वस्त्रों में परिवेष्टित दुलहिन चुपचाप अधोमुख किए बैठी थी । उसका मुख-मण्डल विषाद से परिपूर्ण था और पीला पड़ रहा था मानो भय से उसका रक्त जम गया हो । वह चंचल नेत्रों से कुछ देखती और दूर पर्वतों पर टकराती हुई वायु की ध्वनि को सुनकर चमक उठती थी, मानो उस आनन्द-लोक की अपेक्षा उसका मन भयानक रात्रि में ही अधिक लग रहा था ।

यह उसकी सुहागरात थी, स्वामी से उसका प्रथम मिलन था, उसके मन में लज्जा होनी स्वाभाविक थी, परन्तु यह केवल लज्जा न थी, एक भयानक षड्यन्त्र की आशंका थी । वह आंखें चुरा-चुरा कर कभी महाराणा के हास्योत्फुल्ल मुख को और कभी सुन्दर नेत्रों को भयभीत आंखों से देख लेती थी ।

अनमनी वधू को प्रसन्न करने की पूरी चेष्टाएं की जा रही थीं, महाराणा स्वयं उसकी मनुहार कर चुके थे । सहेलियां और गाने वालियां उसी को लक्ष्य करके व्यंग्य गा रही थीं । पर वह बालिका मानो किसी दूसरे ही गुरुत्वपूर्ण विषय पर विचार रही थी, जो वास्तव में बहुत भयानक...बहुत भीषण था ।

एक दासी ने विनय की—"अन्नदाता, एक ब्राह्मण आपको आशीर्वाद देने आना चाहता है, वह राजकुल-पुरोहित है और बड़ी देर से दर्शनों की हठ कर रहा है । वह एक बार महाराणा को आशीर्वाद दे भी चुका है ।"

महाराणा ने कहा, "ओह, वह बहुत उत्तम ब्राह्मण है, उसे अभी दक्षिणा नहीं मिली ! यह लो और उसे दक्षिणा देकर विदा करो । परंतु अभी मुलाकात नहीं होगी ।"यह कह कर उन्होंने गले से बहुमूल्य मोतियों की माला उतार कर दासी को दे दी ।

वधू एक बार कांप उठी । अंत में उसने एक दासी के कान में कहा—"बस करो, अब गाना-बजाना बंद करो ।"

महाराणा ने वधू का अभिप्राय समझकर गाने वालियों को संकेत से रोक दिया, वह तरंगित वातावरण एकबारगी ही स्तब्ध हो गया।

दासियां महाराणा को मुजरा करके चली गईं। कक्ष में वधू और उसकी एक खास दासी रह गई। वह वधू को पृथक ले जाकर उसका शृंगार करने और पुष्पालंकार पहनाने लगी।

वधू ने विरक्त होकर कहा—"रहने दे, मेरा जी अच्छा नहीं है, बस अब शृंगार की आवश्यकता नहीं।"

"बाईजी राजा, आज ही तो शृंगार का दिन है, मैं पूरा इनाम लूंगी," दासी ने हंस कर कहा।

"तू ये सभी अलंकार ले जा, जल्दी जा।"

दासी हंसी और झटपट अपना असम्भावित इनाम ले बाहर हो गई। वधू अस्वाभाविक तेजी से द्वार तक उसके पीछे दौड़ी।

परंतु महाराणा ने लपक कर उसे पकड़ लिया और कहा, "प्रिये, अब कहां भागती हो ?"

"एक क्षण-भर अवकाश दीजिये महाराज," वधू ने उनके बाहु-पाश से छूटने की चेष्टा करते हुए कहा।

महाराणा ने हंसकर उसे और भी कसकर पकड़ लिया और कहा, "नहीं प्रिये, एक क्षण का भी नहीं। अब तुम मेरी हो।"

"आह ! स्वामिन्, मैं उस दरवाजे को अच्छी तरह बंद कर दूं।"

"वह ठीक बंद है। अब तुम्हारी सखी यहाँ न आवेगी।"

वधू क्षण-भर स्तब्ध रही। महाराणा ने मधुर स्वर में कहा—"क्यों प्रिये, अब यह घूंघट कैसा ?"

वधू काँप रही थी। उसने धीरे से कहा—"मैं बहुत भयभीत हूं।"

"प्रिये, भय क्या है, जब तक यह सेवक यहाँ उपस्थित है ?"

"आपको उस ब्राह्मण का संदेश सुनना चाहिए था, वह अवश्य कोई भयानक संवाद लाया था।"

महाराणा जोर से हंस पड़े। उन्होंने कहा, "ओह, तुम भी उसी के समान भोली हो। उसका संदेश सुन चुका हूं।"



"परंतु मैं बहुत भयभीत हूं ! हैं, यह शब्द कैसा हुआ ? सुनो, सुनो।"

"कुछ नहीं है प्रिये, तुम व्यर्थ ही शंकित न हो।"

वधू ने इस बार स्थिर वाणी से कहा, "ठहरिये ! महाराणा, आपको

धोखा दिया गया है !"

महाराणा ने हंस कर कहा, "कैसा धोखा ?"

"मैं विधवा हूं।"

राणा पर वज्र गिरा। वे मेघ-गर्जन की भाँति गरजकर उसे पीछे धकेलते हुए बोले--"क्या कहा ? फिर कहो !"

"महाराणा, इससे भी महत्वपूर्ण प्रश्न सामने है, आपके प्राण संकट में हैं। उनकी रक्षा कीजिए।" वह चौंक उठी।

एक मशाल का प्रकाश खिड़की की राह उधर ही आता दीख पड़ा। साथ ही नीचे बाग में बहुत-से पैरों की आहट सुनाई पड़ी। इसके बाद शस्त्रों की झनझनाहट तथा बहुत-से लोगों की कर्कश कण्ठ-ध्वनि सुनायी पड़ी।

राणा ने पागल की भांति दाँत पीस कर कहा—"ओह, दगा ! इस समय कोई शस्त्र भी मेरे पास नहीं।"

"आप पीछे की खिड़की से कूद कर भागिए महाराणा, और पच्छिम द्वार से बाहर ही अपनी छावनी में पहुँच जाइए, मैं द्वार रोकती हूं।"

वधू द्वार की ओर लपकी। राणा झटपट खिड़की की ओर दौड़े। उन्होंने हताश हो चिल्ला कर कहा—"शोक, शोक ! इन किवाड़ों में कोई बेंबड़ा और सांकल भी नहीं है।"

राणा किसी शस्त्र की खोज में व्यर्थ इधर-उधर दौड़ने लगे। फिर उन्होंने वधू के पास आकर कहा--"कैसे शोक की बात है, यहां कोई शस्त्र भी तो नहीं।"

शोर बढ़ रहा था।

"स्वामी, जल्दी कीजिये। वह चिमटा लीजिए--उससे फर्श के बीचों-बीच की उस पटिया को उखाड़ लीजिये। उसके नीचे सीढ़ियां हैं। वह तहखाना आपको चौक में ले जाएगा। वहां से आप अपना मार्ग ढूंढ लीजिये।"

महाराणा बिजली की गति से पटिया उखाड़ने को दौड़े। भयानक कोलाहल अब पास आ रहा था, लोगों के पैरों की आहट बढ़ रही थी, लोग

क्रोध में चिल्ला रहे थे। वधू ने चिल्ला कर कहा--"आप जब तक भीतर न उतर जायेंगे, मैं उन्हें रोकूंगी।"

दरवाजे पर चोटें पड़ने लगीं। वधू ने द्वार से अपना कोमल शरीर चिपका लिया और अपनी सुनहरी मृदुल बांहों को लोहे के बड़े बेंबड़ों की जगह डाल दिया। वह वीर बाला, जहां भारी चटखनी की जरूरत थी, वहां अपनी कोमल बांहों का अड़ंगा डाले स्थिर खड़ी रही।

बाहर सैंकड़ों चोटें पड़ रही थीं और उसके हाथों में उसके प्राण आ जूझे थे। उसकी आंखें निकली पड़ती थीं पर वह दांतों से होंठ चबाती हुई उस असह्य वेदना को सह रही थी। उसकी दृष्टि उस पत्थर की पटिया पर थी जो राणा के जाने पर ठीक-ठीक जमकर न बैठ सकी थी।

दरवाजा मानो अब उखड़ा, अब उखड़ा। उसमें हथियार छेदे जा रहे थे। उसकी नोकें वधू के कोमल शरीर में गड़ रही थीं और रक्त की धाराएं उसमें से बह रही थीं। उसकी बाँह दरवाजे पर बाहर से जोर पड़ने के कारण कमान की भाँति मुड़ गई थीं। परन्तु उसने दाँतों से अपने होंठ इतनी दृढ़ता से दबा रखे थे कि हाय का एक शब्द तक उनसे न निकल सका।

राणा ने भीतर से चिल्ला कर कहा, "मैं यहाँ चूहेदानी में बन्द चूहे की भाँति हूं। उधर का दरवाजा बन्द है।"

कोमल बांहें उस भयानक आक्रमण का कहाँ तक सामना करतीं। द्वार टूट गया। वह मुंह के बल गिरी। वह हांफ रही थी। उसकी बाँह टूट गई। कातिल अन्दर घुस आए। एक ने वधू को कुत्ते की भाँति लात मार कर पूछा, "बता राणा कहां है ?"

वह प्रश्नकर्ता और ठोकर मारने वाला स्वयं मालदेव था। वह कुछ न बोली, बेसुध होकर गिर गई।

एक सिंह गर्जना करके राणा एक ही छलांग में ऊपर आ गये। उसके हाथ में वही भारी पटिया थी। उसे उन्होंने एक सिपाही के सिर पर मारा। सिपाही अर्राकर गिर गया, उसकी तलवार झन्नाकर अलग जा गिरी। उसे हाथ

में लेकर राणा ने कहा, "अरे हत्यारो, कायरो, स्त्री-हत्या के पातकियो ! अब आओ ।"

राणा समर का चिर-अभ्यस्त खेल खेलने लगे। शत्रुओं के रुण्ड-मुण्ड कट कर धरती पर गिरने लगे । मार-काट और चीत्कार से रात्रि में पर्वत कांप गये । राणा जिस पर तलवार का हाथ चलाते वह उसकी गर्दन को साफ करती हुई दूसरे के धड़ को चीरती और फिर तीसरे के हाथ-पैरों का सफ़ाया करती पार निकल जाती थी ।

लाशों के ढेर लग गये । राणा उन्हें पैरों से रौंद कर तलवार चला रहे थे। नये-नये सिपाही टिड्डीदल की भाँति चले आ रहे थे । राणा के पास साधारण तलवार थी, बचाव का कोई सरंजाम न था । धीरे-धीरे राणा का शरीर क्षत-विक्षत होने लगा और रक्त अधिक बहने से वे शिथिल होने लगे ।

हठात् उन्होंने विगुल की ध्वनि सुनी । राणा भी जोश में हाथ चलाने लगे । क्षण-भर में राणा के सरदार और वीर भीतर घुस आये । एक बार फिर भयानक तलवार चली । अब चीत्कार और हाय-हाय का अंत न था ।

सरदारों ने आकर महाराणा को हाथों-ही-हाथों में उठा लिया । युद्ध समाप्त हो चला था और शत्रु सब काट डाले गये थे। सरदार ने कहा—"महा-राणा की जय हो ! हम लोग भ्रम में पड़ गये थे ।"

महाराणा ने कहा—"ठहरो, यह बात पीछे होगी । अभी वधू को ढूंढना है···वह शायद लाशों में दब गई है ।"

"अन्नदाता, वे शिविर में हैं, उन्हीं ने हमें सूचना दी है ।"

महाराणा ने कहा, "तो जल्दी चलो ।" वह घोड़े पर न चढ़ सकते थे । पालकी में उन्हें ले जाया गया ।

वधू शैया पर मूर्छित अवस्था में पड़ी थी । राजवैद्य उपचार में व्यस्त थे । राणा ने कहा—"राजपुत्री, तूने विषम साहस किया, क्या तूने द्वार में बाँह अड़ाई थी ?"

राणा ने देखा, बांह की हड्डी चूर-चूर हो गई है और घावों से उसको

शरीर छलनी हो रहा है। वधू ने मुस्करा दिया। राणा की आँखों से आँसू निकल पड़े। उन्होंने कहा—"राजपुत्री ! क्षमा करना, मैंने तुम्हारा अपमान किया था।"

कुछ क्षण वधू के मुख पर वैसी ही मुस्कान छायी रही। उसने कहा—"स्वामिन् ! यह अधम शरीर अच्छा काम आया, अब यदि उस जन्म में फिर ऐसा सुयोग हो, तो क्या आप इस दासी को अपनाएंगे ?"

"वीर बाला, तुम जीवित रहो, मैंने तुम्हें ग्रहण किया। तुम महिषी हो।"

वधू के मुख पर हास्य आया और आईं आंसुओं की दो बूंदें। वे बूंदें क्षण-भर आंखों में रहीं और ढरक गईं—उन्हीं के साथ ढरक गये—वे वीर और प्रेमी प्राण !

●●

बात का धनी

हल्दीघाटी के युद्ध में महाराणा प्रताप की अधिकांश सेना कट मरी थी, वे जंगलों में चले गए। मुगल सेना दूर-दूर तक सारे मेवाड़ में फैल गई। एक के बाद एक किले प्रताप के हाथ से छिनते गए, पर वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर जंगलों में छिपकर अकस्मात मुगल-छावनी पर टूट पड़ते और उन्हें मारकर क्षण में भाग जाते। वर्षों तक इसी प्रकार युद्ध होता रहा। प्रताप को जंगलों में, पर्वतों में, कंदराओं में छिपकर भूखा-प्यासा रहना पड़ता, पर उनकी तलवार और भाला सदैव मुगलों का सिर ढूंढ़ते रहते। उन्होंने अपने विश्वस्त वीर सरदारों की टोलियां बना दी थीं, जो शत्रु को असावधान पाकर पर्वतों और जंगलों से निकल कर मुगलों पर आ टूटते और उन्हें मार-काट और छकाकर फिर अपने स्थानों में छिप जाते। ऐसी ही एक वीर टोली का सरदार रघुपति सिंह था। इसके प्रबल आक्रमणों की मुगलों के मण्डल में ऐसी धाक थी—और उसके नाम से ऐसा आतंक था कि बड़े-बड़े सरदारों का हृदय उसके नाम से दहल जाता था। उसके डर से उन्हें खाना-पीनासोना हराम हो गया था।

रघुपतिसिंह मानो सर्वव्यापी की तरह सदा उनके सिर पर ललकारता रहता था। उनमें से किसी को भोजन करते, किसी को सोते, किसी को बातें करते उसकी तलवार के घाट उतरना पड़ता था। सिपाही सोते-सोते रघुपतिसिंह का सपना देख कर बड़बड़ाया करते थे। मुगलों की एक बड़ी शक्ति रघुपतिसिंह के पकड़ने में लगी थी।

रघुपतिसिंह के परिवार में उसकी स्त्री और इकलौते बेटे को छोड़कर और कोई न था। देश के चरणों में आत्मसमर्पण करने जब वह निकला था, तो उसका प्रिय पुत्र बहुत बीमार था। बादशाह ने उसके पकड़ने को इतनी सेना भेजी थी कि देश मुगलों से भर गया था। रघुपतिसिंह का घर भी घेर लिया गया था। वीर रघुपति को पुत्र का समाचार मिला कि वह कुछ घड़ी का मेह-मान है और अकेली उसकी पत्नी मुगलों से घिरे घर में उसे लिए बैठी है। रघुपति का माथा सिकुड़ गया। कठिन परीक्षा आ उपस्थित हुई।

सूरज डूब रहा था, उसकी लाल किरणें रघुपति के सुनसान मकान पर फीकी ज्योति डाल रही थीं। पहरेदार सावधानी से द्वार पर टहल रहा था। धीरे-धीरे एक मूर्ति मकान की ओर अग्रसर हुई। इस मूर्ति का विशाल शरीर, काली दाढ़ी, मरोड़ी मूछें और उभरी हुई छाती उसकी महत्ता का परिचय दे रही थीं। उसके मुख की प्रभा, नेत्रों का तेज तथा प्रशस्त ललाट दिख रहा था। वह व्यक्ति धीरे-धीरे चलकर द्वार पर आ पहुँचा। पहरेदार ने पुकार कर पूछा—कौन है, खड़े रहो।

'रघुपतिसिंह।'

पहरेदार सन्नाटे में आ गया। उसका मुँह सूख गया। पहले तो उसने संकेत से साथियों को बुलाना चाहा, पर फिर उसने साहस करके कहा—'तुम्हारे वास्ते हुक्म है कि तुम जहां मिलो, पकड़ लिये जाओ।'

'किसका हुक्म है?' रघुपतिसिंह ने दर्प से पूछा।

'बादशाह सलामत का।'

'मैं उसकी प्रजा नहीं हूं!' यह कहकर रघुपति और निकट चला आया।

सिपाही भय से कांप उठा। उसने भीत स्वर से कहा—'इसमें हमारा क्या चारा है। हजारों सिपाहियों ने आपका मकान घेर रखा है।'

रघुपति ने कुछ सोचकर कहा—'तनिक ठहरो, मेरा बच्चा मर रहा है, मैं जरा उसे देख आऊं और पत्नी को तसल्ली दे आऊं, तब तुम मुझे गिरफ्तार कर लेना।'

'और अगर तुम भाग जाओ ?'

रघुपतिसिंह ने तड़पकर कहा—'पातकी, कायर, राजपूतों पर संदेह !'

सिपाही को याद आया, जब वह लड़ाई पर चला था, उसका इकलौता बेटा बीमार था। उसकी आंखों में आंसू भर आये। उसने गद्-गद् होकर कहा—'जाओ भैया, अपने बालक को देख आओ।'

रघुपतिसिंह भीतर आया। मृत्यु-शैया पर पड़े पुत्र को देखकर उसका दिल हिल उठा। लड़का मूर्छित अवस्था में पड़ा था। उसकी स्त्री उसका सिर गोद में लिए स्थिर बैठी थी।

पति को देखते ही स्त्री बिखर गई। रघुपतिसिंह ने कहा—'देवी, अधीर मत हो, यही तो समय है।' उसने बच्चे को देखा, उपचार बताया और चलने लगा।

स्त्री ने पूछा—'कहां चले ?'

'गिरफ्तार होने।'

'ठहरो, मैं गुप्तद्वार खोल देती हूं, उसी राह से निकल जाओ।' रघुपति ने स्त्री को छाती से लगा लिया। वह रोने लगी। उन्होंने कहा, 'मेरी प्यारी, रघुपतिसिंह की पत्नी होकर ऐसी बात कभी मत कहना। शत्रु तुम्हारे स्वामी को झूठा, दगाबाज कहकर पुकारें, इससे तो यही अच्छा है कि वे उसके शरीर की बोटियां काट डालें। सुख में तो सभी की ही मति बनी रहती है। आपत्ति में यदि तुम बुद्धि खो दोगी तो साधारण स्त्री और रघुपति की स्त्री में क्या अन्तर रहेगा ?'

रजपूतनी ने कातर हृदय से माफी मांगी। रघुपति चल दिये। स्त्री ने

कहा--'स्वामी, कुछ क्षण अभी ठहर जाओ।'

रघुपति ने कहा—'नहीं-नहीं; कहीं शत्रु हमें कायर न समझें।'

रघुपति चल दिया। द्वार पर सिपाही से कहा—'अब तुम मुझे गिरफ्तार कर सकते हो।'

सिपाही ने अपना हाथ बढ़ाकर रघुपति के कंधे पर रखा और कहा--'बहादुर, भाग जाओ! खुदा तुम्हारे बच्चे पर करम बख्शे!'

रघुपति ने हाथ मिलाकर कहा--'कभी राजपूत को समय पर आजमा लेना।' अंधेरा बढ़ रहा था। उस अंधेरे में रघुपतिसिंह खो गया।

परंतु सिपाही का वह कार्य उसके अफसर पर प्रकट हो गया। उसने उसे गिरफ्तार करके कहा--'नमकहराम, तेरा यह काम?'

'दुहाई खुदावन्द करीम की, मैंने नमकहरामी नहीं की।'

'तो क्या यह झूठ है?'

'क्या बन्दा-नवाज़?'

'कि तूने दुश्मन को छोड़ दिया, जिसके लिए शाही खजाने से लाखों रुपये बर्बाद हो गये हैं और जिसने सैंकड़ों दीनदारों को हलाक कर दिया है?'

'हुजूर की दुहाई है! वह मुसीबतजदा! उसका बच्चा मर रहा था। वह उसे देखने आया था। मुझे रहम आ गया, आखिर काफिरभी तो इन्सान है।''

'दीनदार होकर काफिर पर रहम? काफिर भी कैसा...जिसने हजारों दीनदारों की औरतों को बेवा बना दिया! वह फंसा हुआ शेर तूने गफलत से नहीं, जानबूझकर छोड़ दिया। पाजी, ठहर, तेरे रहम की कैसी कीमत लगाता हूँ। सिद्दीक मुहम्मद, कस लो इस बदजात की मुश्कें और खम्भों से बांध कर चाबुक उड़ाओ। इस हकीर को शाही हुक्म की उदूली करने का मजा अभी मिल जाएगा।'

अफसर के शब्द मुंह से निकलते ही उसकी मुश्कें कस ली गई, और चाबुक पड़ने लगे। बूढ़ा दिलदार सिपाही तिलमिला कर तड़प उठा। इसके कुछ क्षण बाद ही उसने देखा, रघुपतिसिंह लपका हुआ आ रहा है।

सिपाही ने संकेत से कहा, 'भाग जाओ, भाग जाओ! मैं नाचीज मर

रहा हूं, कुछ परवाह नहीं। मगर तुम कौम के सितारे हो। तुम पर एक मामूली दुश्मन की जान कुर्बान।'

परंतु रघुपति ने आगेब ढ़कर कहा, 'धर्मात्मा यवन, राजपूत अपने लिए अपने मित्रों को कभी संकट में नहीं डालते।' उसने पुकार कर कहा, फौजदार, रघुपति हाजिर है, उसे पकड़ लो और इस बेगुनाह सिपाही को छोड़ दो।' पल-भर में रघुपति की मुश्कें कस ली गईं।

दोनों के कत्ल का हुक्म हुआ। दोनों बांधकर वध्य-भूमि में लाये गए। जल्लाद नंगी तलवार लेकर खड़े हो गये। हजारों लोगों की भीड़ लग गई थी। रघुपति को देखने को सभी उत्सुक थे। सबकुछ तैयार था। बादशाह सलामत के आने की देर थी। जहांपनाह का खास हुक्म मिला था कि यह सजा उनके रू-ब-रू दी जाएगी।

रघुपति ने सिपाही से कहा, 'भई, मुझे यही अफसोस रहा कि तुम्हारे एहसान का बदला न दे सका।'

सिपाही ने कहा, 'कुछ हर्ज नहीं बहादुर, तुम्हारे लिए मरने में कुछ रंज नहीं है।'

लोगों में शोर उठा। दूर पर धूल उड़ती नजर आई। फौजदार ने जल्लाद को तैयार रहने का हुक्म दिया। जल्लादों ने अपनी भारी तलवारों को तौलकर देख लिया। क्षण-भर में सवारों की एक टुकड़ी आ पहुंची। सबसे पहले जो सवार उतर कर खड़ा हुआ, वह शहंशाह अकबर था।

फौजदार ने जमीन तक झुककर आदाब बजाई। बादशाह उधर न देख-कर आगे को सिपाही की ओर बढ़ा। सर्वत्र सन्नाटा था। सिपाही के पास पहुंच कर बादशाह ने कहा—'ऐ नेकबख्त! जो मुसीबतजदों पर रहम नहीं करता, वह सच्चा सिपाही नहीं, खूंखार जानवर है। तूने अपनी लियाक़त से ऊंचा फर्ज पूरा किया है। तेरा ऐसा कसूर नहीं जो माफ न किया जाये। अलबत्ता तेरी तबियतदारी के इनाम में आज से तुम फौजदार बनाये गए।' इतना कह कर बादशाह ने अपने हाथ से सिपाही की बेड़ियां खोल दीं। सिपाही कुछ न कहस का। वह रोता

हुआ वहीं बादशाह केक दमों पर गिर गया । बादशाह रघुपति की ओर बढ़े और नहीं कहा 'बहादुर ! मैं चाहता हूं कि दुनिया जाने कि अकबर बहादुरी का नाकदरा है । तुम्हारे जैसा वीर इस तरह कुत्तों की मौत नहीं मर सकता । जाओ, मैं छोड़ता हूं । जी चाहे राणा के पास लौट जाओ ।' रघुपति का मुंह एक बार लाल हो गया, फिर पीला पड़ गया । क्षण-भर वह खड़ा रहा और फिर उसने अपनी तलवार धरती पर फेंक कर कहा—'शहंशाह, आपकी तेज तलवार और शाही जलाल जो कुछ न कर सका, वह आपकी उदारता ने कर दिखाया । आजसे रघुपति आपका मित्र हुआ ।' बादशाह ने प्रेम से उसे छाती से लगाया और तलवार उसकी कमर से बांध दी ।

राणा के पास ऐसे ही वीर और सत्यवादी देशप्रेमी सरदार थे । उन्होंने जब उसका यह कार्य सुना तो उन्हें उसके सत्य-मार्ग पर गर्व हुआ और उसे क्षमा कर दिया ।

अंत में अनेक कष्ट और बाधाओं को सहते हुए राणा ने भामाशाह की अतुल धनराशि पाकर फिर से सैन्य-शक्ति एकत्रित की और छापामार युद्ध करके मुगलों से किले वापस लेने आरम्भ किये ।

धीरे-धीरे अजमेर, चित्तौड़ और मांडलगढ़ के किलों को छोड़कर शेष सारा मेवाड़ राणा ने जीतकर अपने अधीन कर लिया। उन्होंने २२ वर्ष अकबर से युद्ध किया और प्रण किया कि जब तक मैं चित्तौड़ न ले लूँगा, तब तक शैया पर न सोऊंगा, सोने-चांदी के थालों में भोजन नहीं करूंगा, सेना का बाजा सेना के आगे न बज कर पीछे बजेगा । प्रताप जीवन-भर युद्धरत रहे, परन्तु चित्तौड़ न ले सके । प्रताप के अन्तिम वर्षों में अकबर ने भी अस्वस्थ रहने के कारण उन पर नये आक्रमण नहीं किए । अन्तिम श्वास लेने से पूर्व उन्होंने अपने सरदारों से कहा कि चित्तौड़-विजय जारी रखना, युवराज अमरसिंह की तलवार न झुकने पाये । अजेय योद्धा प्रताप की मृत्यु ५७ वर्ष की आयु में १९ जनवरी, १५९७ को हुई । ●●

